नवाष्टकमालिका

(स्वाभिप्रायनिवेदनैकलक्ष्यास्तवनकुसुमार्चा)

प्रस्तौति

मिश्रो भिरा राजेन्द्रः

प्रयागविश्वविद्यालयीयसंस्कृतप्रवक्तृपदमलङ्कुर्वाणः

वैजयन्तप्रकाशनम्

ोणी रम् ौनपुरम्

ग्रन्थकारः

'अभिराज' डॉ० राजेन्द्रमिश्रः

एम्० ए० (स्वर्णपदकाङ्कः)

प्रकाशिका

श्रीमती अभिराजीदेवीमिश्रा

वैजयन्त-प्रकाशनम्, द्रोणीपुरम् ।

ग्रन्थमुद्रक.

श्रीसत्यमहेशमुद्रणालयः

शिवनगरकालोनी, अल्लापुरम् ।

आवरण चित्रकारः

श्री सोनाघोषालः

प्रथमसंस्करणम्

रूप्यकत्रयमितमूल्यम् ।

प्रास्ताविक

'नवाष्टकमालिका' प्रकाशित होने वाली मेरी चौथी स्वतन्त्र मौलिक संस्कृत-रचना है। मूलत यह मदुपज्ञ देवस्तुतियो एव आत्मनिवेदनो का एक संकलन मात्र है।

साहित्य- र्पणकार आचार्य विश्वनाथ ने महाकाव्य के एकदेश का अनुसरण करने वाली काव्यकृति को 'खण्डकाव्य' कहा था[1]। परवर्ती समालोचको ने खण्डकाव्य को भी अवान्तर भेदो मे विभक्त किया। एक दृष्टि से खण्डकाव्य 'मुक्तक एवं प्र न्ध' के रूप मे कल्पित किये गये। महाकवि भल्लट कृत शतक को मुक्तक का तथा कविकुलगुरु कालिदास प्रणीत मेघदूत को प्रबन्ध का निदर्शन स्वीकार किया जा सकता है। एक अन्य दृष्टि से खण्डकाव्यो को लौकिक तथा धार्मिक— शीर्षको मे व्यवस्थित किया गया। लोक-सम्बद्ध विषयो के प्रतिपादक खण्डकाव्य थम श्रेणी मे तथा सम्पूर्ण स्तोत्र-साहित्य द्वितीय श्रेणी मे गिना जा सकता है।

स्तोत्रो की गणना धर्मपरक, मुक्तक खण्डकाव्य मे की जाती है। स्तुति, स्तवन, स्तोत्र—ये शब्द परस्पर पर्याय हैं। इसी प्रकार ऋक्, ऋचा, अर्चा, अर्चना एवं वन्दनादि शब्द भी स्तोत्र के ही अभिप्राय को व्यक्त करते है।

आचार्यो द्वारा 'ऋक्' शब्द की व्युत्पत्ति बताई गई है—जिसके द्वारा अर्चना अथवा स्तवन क्रिया जाय (अर्च्यते स्तूयतेऽनयेति ऋक्) विश्ववाङ्मय का प्राचीनतम ग्रन्थ ऋग्वेद ऐसी ही देवस्तुतियो का एक अभिनन्दनीय भाण्डागार है।

स्तुतियो अथवा स्तोत्रो का जन्म, इस प्रकार, वैदिकयुग मे ही हुआ। ऋग्वेद में इन्द्र, वरुण, सवितृ, रुद्र, पूषा, विश्वेदेव एवं प्रजापति आदि की,

---

१. ' व्यं भवेत्काव्यस्यैकदेशानुसारियत्। साहित्यदर्पण, परि० ६

विश्वामित्र, वशिष्ठ आदि तप पूत महर्षियो द्वारा प्रस्तुत की गई भावभीनी स्तुतियाँ पढने को मिलती है।

पौराणिक युग मे वैदिक देवशा प्रायः आमूलचूड परिवर्तित हो उठा। इन्द्र, अग्नि तथा मित्रावरुण सरीखे प्रधान वैदिकदेव अब गौण हो गये तथा विष्णु, रुद्र एवं प्रजापति प्रधान! इस युगानुकूल व्यक्तित्व-परिवर्तन के कारण देव-स्तुतियो की मौलिक प्रवृत्ति भी आनुपातिक स्तर पर परिवर्तित हुई। गणपति, दुर्गा, बटुकभैरव, हनूमान् एवं रामकृष्ण प्रभृति अनेक नूतन देव-व्यक्तित्वो के आविर्भाव ने भक्तिभावोल्लसित कवियो के चिन्तनधरातल को एक नया आयाम दिया।

गजेन्द्रमोक्ष, आदित्यहृदय, विष्णुसहस्रनाम, रामरक्षा, नारायणवर्म तथा हनूमत्कवच आदि सहस्रों स्तोत्र इन्ही पुराण ग्रन्थो तथा रामायण-महाभारत की देन हैं।

निश्चयपूर्वक यह नही कहा जा सकता कि आकर ग्रन्थो की परिधि से हट कर, कवियो द्वारा स्वतन्त्र रूप मे स्फुट-स्तोत्रो की रचना का प्रारम्भ कब किया गया? फिर भी, इतना तो सर्वविदित है कि भगवान् शङ्कराचार्य (८वी शती ईसवी) प्रायेण प्राचीनतम स्वतन्त्र स्तोत्रकारो मे अन्यतम हैं। जहाँ एक ओर उन्होंने सौन्दर्यलहरी तथा आनन्दलहरी सरीखे विस्तृत धारावाही शक्ति-स्तोत्रो का प्रणयन किया वही कनकधारा, देवीक्षमायापन, दक्षिणामूर्तिस्तव, गङ्गास्तव तथा चर्पटपञ्जरिका सरीखे लघुकाय स्तोत्रो की भी रचना उन्होने की। ये स्तोत्र प्राय: पञ्चक, षट्क, सप्तक एवं अष्टक के रूप मे प्रणीत किये गये हैं।

भगवान् शङ्कराचार्य के अनन्तर देवस्तुति-प्रणेता सस्कृत कवियो की एक अविच्छिन्न परम्परा दृष्टिगोचर होती है। शङ्कर के पूर्ववर्ती तथा समसामयिक स्तोत्रकारो की भी सख्या कुछ कम नही है। वस्तुत सस्कृत का स्तोत्रवाङ्मय अत्यन्त विशाल, वैविध्ययुक्त तथा आनन्दरसगर्भनिर्भर है।

वाणभट्टकृत चण्डीशतक तथा मयूरकविकृत सूर्यशतक सातवी शती ई० की ात स्तोत्र रचनायें है। आचार्य आनन्दवर्धन (८वी शती ई०) ने देवीशतक

लिखा। इसी प्रकार कुलशेखरप्रणीत मुकुन्दमाला, वेदान्तदेशिककृत पादसाहस्री, पण्डितराज जगन्नाथकृत गङ्गालहरी, दीपकनाथसिद्धकृत त्रिपुरसुन्दरीदण्डक, भास्कररायकृत शिवदण्डक, उमासहाचार्यकृत मातङ्गीस्तोत्र एवं मूककविप्रणीत मूकपञ्चशती परवर्ती युग की प्रख्यात स्तोत्र कृतियाँ है। स्वामी रामानन्द, शिवराम तथा बल्लभाचार्य प्रभृति आचार्यों ने स्फुट देवस्तुतियो का प्रणयन किया है। वस्तुत स्तोत्रकाव्यो के क्रमिक विकास पर एक पृथक् शोधकार्य किया जाना चाहिये।

स्तोत्रकाव्य की पृष्ठभूमि क्या है? संसार के समस्त मानवेतर प्राणी 'भोगयोनि' मे उत्पन्न ताये गये है क्योकि उन्हे केवल उत्पन्न होकर सुख-दुख को सहना है। वे अपनी मुक्ति का उपाय नही सोच सकते, और नही उस दिशा मे प्रवृत्त हो सकते है।

अकेला मनुष्य ही कर्मयोनि मे उत्पन्न हुआ है। 'बडे भाग मानुस तन पावा।' मानव-देह एक प्रयोगशाला है, एक स्वर्णिम अवसरोपलब्धि है। क्योकि एकमात्र मनुष्य ही उचित एवं अनुचित का ज्ञान (विवेक) रखता है। उचित मे प्रवृत्ति तथा अनुचित से निवृत्ति—मनुष्य ही सोच सकता । पूर्वजन्म मे आचरित दुस्सकारो के कारण कभी-कभी होम करते भी हाथ जलते हैं, उपकार करते हुए भी कलकित होना प ता है, प्रीति निभाते हुए भी प्रवञ्चित होना पडता है, धनार्जन करते हुऐ भी लुट जाना पडता है। ससार-सागर के दुस्सह पेडे, शरीर की स्वस्थता समाप्त कर देते हैं, चित्त उद्भ्रान्त हो उठता है। हृदयी मे दुश्चिन्ता-दावानल का मतिभ्रंशी धूमबिम्ब उठता है और मनुष्य की सार योग्यतायें समाप्त होने लगती हैं।

ऐसे ही संकटापन्न क्षणो मे विवेकी पुरुष का सन्तप्त, प्रधर्षित, पीडित, प्रतारित एवं आहत मन ग्राहग्रस्त गजेन्द्र बनकर अपने इष्टदेव के लिये क्रन्दन करने लगता है। ब्रह्माण्ड का कण-कण देवमय है, ईश्वरमय है। अग्नि चाहे शमी की लकडी से निकाल लीजिये, चाहे दो शिलाखण्डो को परस्पर आहत कर, चाहे दियासलाई से और चाहे विद्युत से। है वह सर्वत्र!

इसी प्रकार एक ही परमशक्ति विष्णु, शिव, राम, कृष्ण, दुर्गा, हनूमान्—किसी भी नाम से आवाहित, अभिमंत्रित और प्रार्थित की जाने पर, आर्तजन की रक्षा के लिये दौड पडती है। मेरी अपनी दृष्टि मे स्तोत्रकाव्य ी यही मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि है।

सर्वोत्तम स्तोत्रकाव्य मैं उसे स्वीकार करता हूँ जो औपचारिकतावश पिटी पिटाई शैली पर न लिखा गया हो। पुराण-वर्णित भगवल्लीलाओ तथा भक्त-जनानुग्रह-वृत्तो को ही तोड-मरो कर फिर से लिख देना—तकनीकी दृष्टि से स्तोत्र हो सकता है, परन्तु है वह पिष्टपेषण मात्र! वस्तुत· स्तोत्र मे मौलिकता होनी चाहिये।

'आत्माभिप्रायनिवेदन' स्तुतिकाव्य का प्राणतत्त्व है। जगन्नियन्ता से अपना दुखडा रोना तथा न्याय की भीख माँगना ही स्तोत्र है। पण्डितराज जगन्नाथ प्रणीत गङ्गालहरी का एक-ए पद्य उनकी मानसिक पीडा, अि नता, असहायता तथा अनन्यशरणत्व का परिचायक है। सौन्दर्यलहरी का प्रत्येक श्लोक भगवान् शङ्कराचार्य के ज्ञानदीप्त मेधावी चिन्तन का काव्यस्फुरण है।

यदि 'अभिमान' की स ा न दी जाय तो पूरे मन से कहना चाहूँगा कि 'मैं अत्यन्त धर्मभीरु प्राणी हूँ।' धर्मभीरु पारम्परिक, दकियानूसी शैली मे नही बल्कि इस अर्थ मे कि जानबूझ कर, स्वार्थसिद्धि मात्र के लिये अनुचित नही कर सकता। और यही, जीवन के कुछ चुनौतीपूर्ण मुद्दो पर मेरी पराजय का मूल रहस्य भी हैं।

बचपन से ही पितृहीन, असहाय, दिग्भ्रान्त, समस्याक्रान्त तथा पीडित रहा हूँ। जिस किसी के हाथ मे, विश्वस्तभाव से अपना व्यक्तित्व सौप दिया—वही मेरी यशश्चन्द्रिका के लिए 'राहु' बन गया। परन्तु भला हो जगज्जननी माँ चण्डी का, जिसकी कृपावश विवेक प्रत्येक परिस्थिति मे मेरा साथ देता रहा। उसी ी अभयमुद्रा का यह प्रतिफल है कि अपनी कुलिश-कठोर पीडाओं को मैने, अपनी ही सूझ-बूझ से गला कर पानी बना दिया। मेरी नेत्र-कार्यशाला मे यह कार्य बरसो से होता रहा है। यही मेरा 'व्यक्तित्व-रसायन' है।

स्वान्त. सुखाय लिखी गई ये देवस्तुतियाँ उस 'नेत्रजल' के सिवाय और कुछ नही हैं। कुछ लोग इसे निरा पानी मानते हैं, कुछ लो रोदनाश्रु तथा कुछ लोग चञ्चल पारदविन्दु ! परन्तु कुछ ऐसे लोग भी हैं जिनकी दृष्टि मे ये जलविन्दु 'मौक्तिकविन्दु' है। जय हो उन सहृदयो की ! उन्ही के परितोषार्थ मैने इस 'आत्मक्रन्दन' का संकलन किया है और उन्ही आस्थालु सहृदयजनो के लिये इस संकलन का प्रकाशन भी कर रहा हूँ। विश्वास है कि परितुष्ट होकर वे सब मुझे आशीष देंगे।

अपने विविध यात्रा-प्रसगो मे सकलन की कुछ स्तुतियाँ संकटमोचन (वाराणसी), बडी चण्डिका (महोबा) तथा बिहारी जी (वृन्दावन) के समक्ष निवेदित कर चुका हूँ। विश्वास करता हूँ कि इससे स्तुतियो के भा गत दोष का मार्जन भी हो गया है।

आर्यान्योक्तिशतकम् मे मैने वशंवद सहृदयजनो से निवेदन किया था कि 'मेरा अगला प्रकाशन होगा—प्रमद्वरा नाटिका' ! किन्तु अनेक झंझावातों के कारण योजना पूर्ण न हो सकी। अपने काव्यशिशुओ—राजर्षि एवं प्रमद्वरा—से मैंने इसीलिये क्षमायाचना र ली है।

स्नेही अग्रज, समर्थसाधक डॉ० हरिशङ्कर त्रिपाठी जी के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ—प्रकाशन से पूर्व इत स्तोत्रो को यदाकदा सुनने एवं सराहने के लिये। पूज्यपाद स्वामी धर्मानन्द जी (परमार्थ-आश्रम, हरिद्वार) ने भी इन स्तुतियो का सुना है तथा आशीर्वाद दिया है। मै सर्वात्मना अनुभव करता हूँ उनके स्निग्ध-वात्सल्य का।

प्रिय भाई सोना घोषाल तथा अशोक पाण्डेय को भी आवरण-सज्जा एव प्रकाशनार्थ धन्यवाद देता हूँ।

वैजयन्त
८ बाघम्बरी मार्ग
इलाहाबाद।

भगवन्निष्ठ
राजेन्द्र मिश्र

राजर्षि

एव

प्रमद्द्वरा

के प्रति :

मद्व्याहारकुशीलवौ युगलकौ लीलाशुकौ मत्सुतौ
च त्काव्यकलेवरौ सुललितौ क्षम्ये युवाभ्यां न किम् ?
योऽहं कल्पनया खलीकृतमतिर्जीवातुखञ्जीकृत.
युष्मज्जन्म मृषा विधाय निभृत गायामि नन्दात्मजम् !!

अभिराजराजेन्द्रविरचित

नवाष्टकमालिका

मरन्दमाधुरीस्तवनम्

कलक्वणितवल्लकीविविधरागरागायितम्
अमन्दगतिरोदरप्रमदगुञ्जितैर्व्यञ्जितम् ।
अशेषकलिकल्मषव्रततिकालकालान्तक
तनोतु सुरभारती दृशि सदैव मोदाङ्कुरम् ॥१॥

सुमनोहर ध्वनियो वाली वीणा की विविध रागिनियो से रागायित, निरन्तर स रणशील भ्रमरो के मदमाते गुञ्जनो से अभिव्यक्त तथा समस्त कलिकल्मष ्पी लतासमृद्धि के लिये कालान्तक सदृश 'मोदाङ्कुर' को माँ वाणी सदैव (मेरी) आँखो मे विस्तारित करे ।

क्वचित्सहृदयावलीकुतुककारि विव्याहृत
क्वचिच्च कलताण्डवानुगतलास्यसङ्गीतकम् ।
प्रमर्दितशिलाञ्चलस्फुटरवत्रिधार क्वचित्
तनोतु सुरभारती दिशि सदैव शोभाङ्कुरम् ॥२॥

कही पर—सहृदयजनो के कौतूहल को बढाने वाले पक्षियो के गीतों के समान और कही पर—रमणीय ताण्डव (उद्धतनृत्य) से अनुगत लास्य (कोमलनृत्य) सगीतक के समान, कही पर—चूर-चूर कर दिये गये शिलाखण्डो में सुस्पष्ट कलकल ध्वनि सहित बहने वाली त्रिधारा सरिता के समान 'शोभाङ्कुर' को माँ वाणी सदैव दिगन्त मे विस्तारित करे ।

विभूतिमतिदायिनी चरितपूतमन्दाकिनी
प्रसूतिरनपायिनी मतिमतां हृदुल्लासिनी ।
अनन्तशतहायनी प्रथितपुण्यपुण्याङ्गिनी
तनोतु सुरभारती भुवि सदैव भोगाङ्कुरम् ॥३॥

ऐश्वर्य तथा बुद्धि प्रदान करने वाली, रामादि महापुरुषो के चरितकीर्तन की पवित्र गङ्गा, अक्षुण्ण उद्भववाली, मनीषियो के हृदयो को उल्लसित कर देने वाली, अनन्त शतवर्षों की अवधि वाली तथा लोकविख्यात पुण्यो की पुण्याङ्गिनी-स्वरूपा माँ वाणी भूमण्डल में सदैव 'भोगाङ्कुर' को विस्तारित करे ।

कलाकलितकौमुदीधवलचन्द्रबिम्बोपमा
नमेरुसुमकोमला परभृतैककण्ठप्रिया ।
वशीकृतसुवैदुषी शुभमसी स्फुरच्छेमुषी
तनोतु सुरभारती गिरि सदैव योगाङ्कुरम् ॥४॥

षोडश कलामण्डित चन्द्रिका से युक्त शुभ्र चन्द्रबिम्ब के समान, नमेरु-पुष्प जैसी कोमल, एकमात्र कोकिल के कण्ठ को प्रिय लगने वाली, प्रकृष्ट विद्वत्ता को धारण करने वाली, पवित्र स्याही (वाङ्मय) वाली तथा प्रतिभा को स्फुरित कर देने वाली माँ वाणी (मेरी) वाणी मे सदैव 'योगाङ्कुर' को विस्तारित करे ।

अलङ्कृतिमयी रसध्वनिमयी गुणैर्गुम्फिता
प्रवृत्तिमधुवृत्तिका प्रचितरीतिवक्रोक्तिका ।
कवीन्द्रकवितावधूस्सततमालसद्वैभवा
तनोतु सुरभारती हृदि सदैव रागाङ्कुरम् ॥५॥

(उपमादि) अलङ्कारो से युक्त, (शृङ्गारादि) रसो तथा ध्वनियो से युक्त, (माधुर्यादि) गुणो से संवलित, (कोमलादि) प्रवृत्तियो रूपी मधुर व्यवहारो से शोभित, अनेक रीतियो तथा भङ्गीभणितियो से सम्पन्न, निरन्तर वैभवमण्डित तथा कवीन्द्रो की कवितावधूटी सुरभारती हृदय मे सदैव 'अनुरागाङ्कुर' को विस्तारित करे ।

अये रटवाहिनि ! प्रथितकाव्यरूपाङ्गने !!
विधेहि करुणाम्मयि प्रसर मद्वचोभिस्स्वयम् ।
मरन्दमृदुमाधुरी नयनपुष्पजाताऽऽमृता
यथा जननि ! तावकी कवनकेलिनेत्री भवेत् ॥६॥

प्रख्यात काव्य-नाटक-सुन्दरि ! हे हसवाहिनि ! तुम मुझ पर दयादृष्टि रखो । मेरी वचनावलियो द्वारा स्वयं विकसित होओ । हे माँ ! ताकि (तुम्हारे) नयनरूपी पुष्पो से उद्भूत, अक्षुण्ण पुष्पासव सरीखी तुम्हारी मृदु मधुरिमा कविता-क्रीडाओ को समुन्नत करे ।

तुरीयनिगमागमं प्रभवनाशहीनोपम
करोषि विविधाङ्गकं त्रितयरूपमार्षक्रमम् ।
[1]पुराणसर्णि कदाचिदपि रम्यरामायणं
तनोषि ननु शारदे ! जगति वाङ्मयं पुष्कलम् ॥७॥

उद्भव एवं विनाश से विरहित साम्य वाले चारो वेदो तथा आगमो से युक्त, शिक्षादि षडङ्गो से युक्त, ऋक् यजुष् और सामन्—इन त्रिविध रूपो वाले, आर्ष क्रम वाले, प्राचीन परिपाटी वाले तथा किसी युग विशेष मे (विरचित) रम्य रामायण वाले प्रचुर वाङ्मय को हे माँ वीणापाणि ! निश्चय ही तुम जगती मे विस्तारित करती हो ।

कुमारमपि भावयस्यथ च मेघदूतायसे
सुबन्धुसुमुखायसे दशकुमारचरितायसे ।
अमन्दरसचर्वणामरुककाव्यलीलामयी
त्वमेव शुचिहासिनि ! प्रकटयस्यदो वैभवम् ॥ ॥

(कुमारसम्भव महाकाव्य मे) कुमार स्वामिकार्त्तिक को भी उत्पन्न कराती हो, मेघदूत सरीखा आचरण करती हो, सुमुख महाकवि सुबन्धु बन जाती हो तथा दशकुमारचरित का निदर्शन प्रस्तुत करती हो। अमन्द रसानुभूति वाले अमरुककाव्य की लीलाओ से संवलित, पवित्र मुस्कान वाली हे माँ ! तुम्ही उस (काव्य) वैभव को प्रकट करती हो ।

---

१. अष्टादशपुराणानि एव सरणिः प्रवृत्तिर्यस्य तत् वाङ्मयमित्येतदपि चिन्तयितु शक्यते ।

न किमप्यखिलं भुवि देवि ! फलं गुणदोषमयं महितामहितम्
विमत सुमतं नियतं विततं रहितं महितं ललितं गलितम् ।
न च यत्तव रूपरसामृतसिन्धुमसीलिखितं परितोषयुतम्
ननु दिव्यपथं तव सञ्चरणस्य विलोक्य मनस्समुपैति मुदम् ॥९॥

हे देवि ! भूतल मे प्रतिकूल अथवा अनुकूल, नियन्त्रित अथवा प्रसारित, विरहित अथवा साहचर्ययुक्त, शोभन अथवा अशोभन, प्रशंसनीय अथवा निन्दनीय तथा गुणदोषमय कोई भी अक्षत फल नही है जो परितोष न देने वाला हो तथा तुम्हारे सौन्दर्य रूपी रसामृतसिन्धु की स्याही से न लिखा गया हो । निश्चय ही तुम्हारे सञ्चरण का यह अलोकसामान्य पथ देख कर मन प्रसन्न हो उठता है ।

मरन्दमाधुरीनामस्तवन शारदापरम् ।
वर्द्धापनपरं भूयान्नित्यं कवियशोऽर्थिनाम् ॥१०॥

वीणापाणि सरस्वती से सम्बद्ध 'मरन्दमाधुरी' नामक (यह) सस्तवन नित्य ही कविजनोचित कीर्ति चाहने वालो के लिये उत्साहवर्धक बने ।

ऋषिदृग्गगनदृगाख्ये[1] माधवमासेऽथ पार्वणे चन्द्रे ।
वाण्यष्टकं प्रणीतं कविनाऽऽभिराजराजेन्द्रेण ॥११॥

ऋषि (सात) नेत्र (दो) आकाश (शून्य) तथा नेत्र (दो) सज्ञक अर्थात् सवत २०२७ विक्रमी मे, वैशाख मास की पूर्णिमा तिथि के दिन कवि अभिराज-राजेन्द्र द्वारा यह शारदाष्टक प्रणीत किया गया ।

---

१. अङ्कानां वामतो गतिरित्यनेन विधिना ऋषयस्सप्त दृशौ द्वे गगन शून्यं दृशौ पुनर्द्वेऽथ सर्व समानीय सप्तविंशत्यधिकसहस्रद्वयमित विक्रमीय हायन प्रस्फुटीभवति ।

स्तनन्धयक्रन्दनम्

दिव याते ताते[1] नववयसि सोढ्वा विपदर
यया तद्रूपिण्याऽखिलविभवदानैरुपकृत. ।
यदेकस्मृत्याभा प्रभवतितरा पापशमने
विनीतोऽहं वन्दे भुवनजननी तामुदयिनीम् ॥१॥

नूतन अवस्था वाले पितृचरण के दिवङ्गत हो जान पर, विपत्तियो के चक्रवात को सह कर तद्रूपिणी (अर्थात् भगवती दुर्गा के स्वरूप वाली) जिस (अपनी माँ) के द्वारा, समस्त ऐश्वर्यो को देकर उपकृत किया गया और जिसकी एक स्मृतिज्योति पापो का शमन करने मे समर्थ ह—उस अभ्युदयशालिनी, त्रैलोक्यप्रसविनी माँ दुर्गा की वन्दना मै विनतभाव से कर रहा हूँ ।

क्रियन्तोऽनाचारा· दुरितबहुलाश्चाघनिचिता.
द्विषद्भिर्नो दत्ता पिशुनशुनकैर्हन्त सततम् ।
तथापि प्राशुत्व न खलु मनसो यद्व्यपगत
तवैवासीदाशी हिमगिरिसुते ! सौम्यसरणि ॥२॥

---

१ पूज्य पितृचरण पण्डित दुर्गाप्रसाद मिश्र २६ वर्ष की अवस्था मे ही गोलोकवासी हुए । उस समय (सन् १९४५ ई०) कवि ढाई-तीन साल का अबोध शिशु मात्र था । पितृचरण का यही मर्मान्तिक अभाव कवि की वाणी मे मुखरित हुआ

अल्पवय मे ही बना अनाथ स्वप्न हो गया पितृव्यवहार ।
तदपि किस पूज्यपिता के हेतु व्यथित होता मन बारम्बार ॥
(वेदना, पृष्ठ बत्तीस)

लघु जीवन मे ही अनाथ बना, जनकाश्रित स्नेह हुआ सपना ।
फिर भी किस पूज्यपिता के लिये मन मेरा सदा ललचाया करे ?
किस प्रेयस का अनुराग प्रिये ! मन की कविता बन जाया करे ?
(दो पात नीबू-तीन पात अमोला, पृष्ठ इक्यासी)

दुख की बात है माँ ! श्वान सरीखे निन्दक शत्रुओं द्वारा, पापपूर्ण तथा कलङ्कसङ्कुल कितने ही अत्याचार मेरे प्रति निरन्तर बरते गये ? फिर भी मेरे मन का स्वाभिमान जो टूटा नही, माँ पार्वति ! निश्चय ही वह तुम्हारा आशीष था, अनुकूल-मार्ग वाला आशीष !!

विधान वेदाना धनपतिनिधान कनकित
मघोनस्सर्वस्व प्रणयकलनञ्चापि कृतिनाम् ।
मयाऽवाप्तम्माऽ प्रतिहतधनाशेन निखिल
सदा नाम नाम चरणयुगमानीय हृदये ।।३।।

हे जननि ! तुम्हारे चरणयुगल को वार-बार प्रणाम करके और (उन्हे) हृदय मे स्थापित करके, ऐश्वर्य की आशा से विरहित मेरे द्वारा सब कुछ प्राप्त कर लिया गया—वेदो का विधान, स्वर्णखचित कुबेर का भाण्डागार, देवराज इन्द्र का वैभव और भाग्यशालियो का प्रणयव्यवहार !!

न कोऽप्यासीद्‌बन्धुर्विपदि न सखा नापि जनकः
न पुत्रः पौत्रो वा परिसरजनो न प्रणयिनी ।
न भार्या न ज्ञाति. पुनरपि न मे कोऽपि भविता
त्वमेवैका प्राणाञ्जननि ! परिपातु प्रभवसि ।।४।।

विपत्ति के दिनो मे कोई भी व्यक्ति मेरा भाई नही बना । न कोई मित्र था, न पिता (रक्षक) न पुत्र अथवा पौत्र, न पडोसी, न प्रेमिका, न पत्नी और न ही नाते-रिश्तेदार ! भावी विपत्ति मे भी कोई 'मेरा अपना' नही होगा ! हे अम्ब ! एकमात्र तुम ही प्राणो की रक्षा करने मे समर्थ हो !

छलैकप्राणेभ्यो गरलगरला प्राप्य निकृति
यदा बुद्धिर्जाता मरणवरणायैव निभृतम् ।
स्मृतिस्तावत्त्वय्येवाभवदयि शिवे ! सान्त्वनपरा
कथं त्वद्‌वात्सल्यं मदुपकरणं न प्रभवतात् ।।५।।

प्रवञ्चक-शिरोमणियो से अतिशय बिषाक्त अपमान प्राप्त कर, जब कभी, चुपचाप मृत्यु का ही वरण कर लेने की इच्छा उत्पन्न हुई (तब) हे माँ ! तुम्हारी स्मृति ही (मुझे) सान्त्वना प्रदान करने वाली बनी। मेरा उपकार करने वाला तुम्हारा (वह) वात्सल्य भला कैसे प्रभावशाली न हो ?

न जानामि स्वार्थं प्रकटनविधि वा स्वविरतेः
अनल्पा स्वल्पा वा न खलु जगतो वञ्चनकलाम् ।
इयत्येवाऽऽकाक्षा जननि ! नितराम्मे त्वदनुगा
भवेद्दीपौपम्या धवलधवला जीवनशिखा ।।६।।

स्वार्थं (आत्महित) नही जानता, न ही अपनी विरति (वैराग्य) की प्रकटनविधि को जानता हूँ। अत्यधिक अथवा अत्यल्प—ससार की प्रवञ्चनाकला को भी निश्चय ही मै नही जानता। हे जननि ! तुम्हारी कृपाकाक्षिणी, मेरी बस इतनी ही आकाक्षा है कि दीपक के समान (मेरी) जीवन-ज्योति अतिशय धवल हो।

अपर्णे ! त्वद्धाम प्रथितविबुधालम्बनपर
समेषा जीवानां त्रिविधपरितापं शमयति
कनिष्ठ पापीयान्सकृदपि यदि स्यात्समुचित-
स्तव स्नेहाशाना किमपरमभीष्टं भवति ..तु ।।७।।

हे अपर्णे ! भुवनविश्रुत देवताओ का अवलम्बनभूत तुम्हारा प्रकाश (तेजस्विता) समस्त प्राणियो के दैहिक, दैविक तथा आत्मिक तापो का शमन कर देता है। अपेक्षाकृत अधिक पापमय तथा कनिष्ठ अर्थात् अल्पवयस्क मै यदि तुम्हारे स्नेहाशो का पात्र बनता हूँ तो फिर (इससे अधिक) और कौन वस्तु मुझे अभीष्ट होगी ?

प्रयच्छाम्ब ! क्षान्ति विविधविभुतास्मङ्गलमयी
क्षमै यावद्ध्यातु यमितमनसा त्वामनुदिनम् ।
स्मितस्यन्दाज्जा ैर्वरदकिरणैर्दीपितमनाः
अवश्य ससिद्धि सुकृतकलिताङ्गीमुपलभे ।।८।।

शान्ति दो माँ ! मङ्गलमयी विविध समृद्धियाँ दो, ताकि सयमित मन से दिन-प्रतिदिन तुम्हारा चिन्तन करने मे समर्थ होऊँ। तुम्हारे स्मित-प्रवाहो से उत्पन्न अमोघ-कान्तियो द्वारा प्रकाशित चित्तवृत्ति वाला मै, अवश्य ही, सुकृतो से विभूपित स्वरूप वाली सिद्धि को प्राप्त करूँगा ।

निपतितोऽस्मि शिवेऽगतिरौरवे
प्रसभमेत्य समुद्धर साम्प्रतम् ।
रचयतस्सुकृतं प्रणतस्य मे
भवतु येन सुधाञ्चितजीवितम् ॥९॥

माँ दुर्गे ! दुर्दशाओ के रौरव-नरक मे बुरी तरह गिर गया हूँ। अब शीघ्रतापूर्वक आकर (मुझे) उबार लो ताकि सत्कर्मो मे निरत मेरा जीवन अमृतमय हो जाय ।

मातर्भवानि भुवनेश्वरि शैलपुत्रि
मातङ्गि भैरवि शिवे वगलेऽनवद्ये !
श्यामे रमे महिषमर्दिनि चन्द्रघण्टे
मज्जीवितं कलय देवि वरप्रदानै ॥१०॥

भवानी, भुवनेश्वरी, शैलपुत्री, मातङ्गी, भैरवी, शिवा, अनवद्या बगला, श्यामा, रमा, महिषमर्दिनी तथा चन्द्रघण्टा अभिधानो वाली हे माँ ! हे देवि !! वर-दानो से मेरे जीवन को तुम श्रीमण्डित कर दो ।

त्वन्मुदा निखिल भूयाच्चामीकरचमत्कृतम् ।
मङ्गल मृदुल रम्य शोभनञ्चापि मामकम् ॥११॥

(हे अम्ब !) तुम्हारे प्रसाद से मेरा सब कुछ मङ्गलमय, मधुमय, रम्य, शोभन तथा सुवर्णदीप्त हो जाय ।

वसुदृग्गगनदृगब्दे श्रावणमासेऽसितेऽह्नि शुक्राख्ये[1] ।
क्रन्दनमिदमुपनीतं कविनाऽऽभिराजराजेन्द्रेण ॥

वसु (आठ) दृक् (दो) गगन (शून्य) तथा दृक् (दो) सज्ञक विक्रमसवत् (अर्थात् सवत् २०२८) मे, कृष्णपक्षीय श्रावण मास मे, शुक्रवार के दिन कवि 'अभिराजराजेन्द्र' द्वारा यह क्रन्दन (माँ के चरणो मे) अर्पित किया गया ।

१. आग्लतिथिगणनया जुलाईमासस्य एकसप्तत्यधिकोनविंशतिशततमस्य ख्रिस्ताब्दस्य द्वाविंशतारिकाया रात्रावेकादशवादने स्तवनमिदं पूर्णता यातम् ।

आशुतोषाराधनम्

जगत्प्रकाशचन्दिर जगद्विकाशमन्दिर
जगद्विनाशसुन्दर लयङ्कर दिगम्बरम् ।
शिव शिवासहायक भवं भवद्विनायक
मदेकमुक्तिदायक भजे पुरारिनायकम् ।।१।।

लोकप्रकाशक चन्द्रमा, सृष्टिविकास के मन्दिर, सृष्टि के विनाश-कार्य से सुशोभित, युगान्तकारी, निर्वसन, पार्वतीपति शिव, गणपति को जन्म देने वाले भव तथा मुझ (आर्तजन) को एकमात्र मुक्तिदायक, त्रिपुरारि की मै वन्दना करता हूँ ।

ललाटपट्टकालसन्मृगाङ्कनूतनच्छवि
गलस्फुरद्दहद्गर करत्रिशूलभूषणम् ।
विरुण्डमुण्डमालक डमन्निनादनादक
नगेन्द्रनन्दिनीपति भजे प्रचण्डताण्डवम् ।।२।।

भालपट्ट पर चतुर्दिक सुशोभित चन्द्रकला की नूतनकान्ति वाले, कण्ठ-प्रदेश मे देदीप्यमान, धधकते हालाहल से युक्त, हाथ मे त्रिशूल रूपी भूषण से युक्त, रुण्ड (धड) रहित नरमुण्डो की माला से शोभित, 'डमृडम्' ध्वनि (डमरू से) उत्पन्न करने वाले तथा रौद्र ताण्डवनृत्यकर्ता पार्वतीपति की मै वन्दना करता हूँ ।

अखण्डमण्डलायित त्रिलोकमङ्गलायित
नगेन्द्रपृष्ठराजित सुरासुरैस्सभाजितम् ।
विशुद्धबुद्धनित्यमुक्तचिन्मय निरञ्जन
अशेषपापगञ्जन भजे विषादभञ्जनम् ।।३।।

निखिल-ब्रह्माण्डमय, त्रैलोक्य-मङ्गलमय, हिमगिरि की पीठ (कैलाश) पर विराजित, देवताओ तथा राक्षसो द्वारा अभिनन्दित, शुद्ध-बुद्ध, जन्मजरादिरहित, निस्सङ्ग, आनन्दमय, विकाररहित तथा समस्त पापो का नाश करने वाले विषादभञ्जन शिव की वन्दना करता हूँ ।

नदत्तरङ्गभूरितोयभङ्गिमानयल्लसद्
भगीरथानुगां पुरन्दरापगाम्महीयसीम् ।
निवासयञ्जटाकदम्बकेषु लोकपावनी
भवेन्ममौजसां पति पिनाकपाणिरीश्वर ॥४॥

शोर मचाती हुई तरङ्गावलियो की प्रचुर आवर्तो से युक्त, (स्वर्ग से पृथ्वी की ओर) ले जाते हुए, शोभायमान महाराज भगीरथ का अनुसरण करने वाली, महिमामयी, लोकपावनी गङ्गा को जटाजूटो मे तिरोहित कर लेने वाले भगवान् पिनाकपाणि मेरी शक्तियो के स्वामी बनें।

ज्वलत्तृतीयलोचनस्फुरद्विषाग्निजालकै.
क्षणेन बुद्बुदोपम जगद् विधाय भस्मकम् ।
महाट्टहासगर्जनैर्विकम्पयन्तमम्बर
प्रमत्तलीलकं भजेऽन्तकान्तभीमभैरवम् ॥५॥

प्रज्वलित तृतीय नेत्र की देदीप्यमान, विषाक्त अग्निज्वालाओ से क्षण भर मे बुदबुद-सरीखे ससार को राख बनाकर, भयकर अट्टहास-गर्जनाओ से आकाश को कँपाते हुए, उन्मत्त क्रीडाओ वाले मृत्यु के (भी) विनाशक भीमभैरव की मै वन्दना करता हूँ।

अपाङ्गभङ्गलीलया वशवदाय तत्क्षण
प्रदत्तहेमभूधरं सुसिद्धिगन्धमादनम् ।
निरम्बुमेघसन्निभावदातचारुविग्रह
कपालिपादपङ्कजं भजे तुरीययोगदम् ॥६॥

कृपाकटाक्ष मात्र से प्रियजन को तत्काल ही सुवर्णगिरि सौप देने वाले, सिद्धियो के गन्धमादनभूत, जलरहित अर्थात् धवल मेघखण्ड के समान शुभ्र रमणीय विग्रह [शरीर] वाले तथा तुरीययोग (मोक्ष) दाता कपाली के चरणकमल की वन्दना करता हूँ।

अये वृषेन्द्रवाहन प्रभो स्मरप्रणाशन
प्रसीद पश्य वत्सक त्वदुन्मुख त्वदुत्सुकम् ।
ममानुकूलसाधको मदीयपापनाशको
भवाशुतोष ! मामकोऽन्तमेमि यावदात्मन· ।।७।।

प्रभो वृषभेन्द्रवाहन कन्दर्पदलन ! प्रसन्न हो जाइये । अपने प्रति उन्मुख तथा लालायित (मुग्ध) वत्स को देखिये । हे नाथ ! मेरे अनुकूल साफल्य-दाता बने, मेरे पापो का विनाश करे । हे आशुतोष ! जब तक मै अपनी जीवनयात्रा के अन्त तक पहुँचूँ (तव तक) 'मेरे' बने रहे ।

न वेद्म्यहं तव स्तव निसर्गमौढ्यसन्तति-
र्महेश्वर ! त्वदीयकीर्तिकीर्तनेऽविचक्षण· ।
तथापि यत्स्खलद्गिरा विरौमि भृङ्गगुञ्जनं
तदस्तु तोषणाय धूर्जटे ! सदप्यपार्थकम् ।।८।।

जन्म से ही जाड्योपहत मै तुम्हारा सस्तवन नही जानता । हे महेश्वर ! तुम्हारा विरद बखानने मे (भी) चतुर नही हूँ । फिर भी टूटी-फूटी वाणी से जो भौरे की तरह (आपका यश) गुनगुना रहा हूँ, भले ही वह निरर्थक [असम्बद्ध] हो, हे धूर्जटे ! भवदीय परितोष के लिये हो ।

कैलासाधिपतिं सुरासुरपतिं मेनाङ्कजाया पतिं
भूतप्रेतपिशाचगुह्यकपतिं यक्षोरगाणां पतिम् ।
गन्धर्वाप्सरसां पतिं वृषपतिं वाणीपतिं धीपतिं
ब्रह्माण्डाधिपतिं तमेव वृणुते भक्तिर्मदीया मुदा ।।९।।

कैलाश-पर्वत के स्वामी, दवो तथा असुरो के स्वामी, हिमाचल-पत्नी मेना की अङ्कजा (पार्वती) के स्वामी, भूत प्रेत पिशाच तथा गुह्यको के स्वामी, यक्षो तथा नागो के स्वामी, गन्धर्वो तथा अप्सराओ के स्वामी, नन्दी वृषभ के स्वामी, वाणी तथा बुद्धि के स्वामी उन्ही ब्रह्माण्डपति शङ्कर को मेरी भक्ति प्रसन्नता पूर्वक वरण करती है ।

वाञ्छा पूरय मे नाथ ! मधुरीकृत्य जीवितम् ।
इदमेव सदा याचे नेतरा विद्यते स्पृहा ।।१०।।

जीवन को मधुर बना कर हे नाथ ! मेरी कामना पूर्ण करो। सदैव यही याचना करता हूँ और कोई आकाक्षा नही है ।

आशुतोष ! वरं देहि हृदय त्वन्मय भवेत् ।
यदिच्छामि शुभं भव्यं स्यादवश्य त्वदाशिषा ।।११।।

हे आशुतोष ! वर दीजिये कि हृदय आपमे रम जाय । मै जो कुछ कल्याण एव मङ्गल चाहता हूँ [वह] आपके आशीष मे अवश्य पूर्ण हो ।

वसुदृग्गगनदृगब्दे श्रावणमासे सितेऽह्नि रविजाते[1] ।
आराधनमिदमाप्त कविनाऽऽभिराजराजेन्द्रेण ।।१२।।

वसु [आठ] दृक [दो] गगन [शून्य] तथा दृक् [दो] स विक्रमसवत् [अर्थात् विक्रमसवत् २०२८] मे, शुक्लपक्षीय श्रावणमास मे, रविवार के समय, कवि 'अभिराजराजेन्' द्वारा यह आराधन प्राप्त किया गया ।

---

१. पूर्ववत् जुलाईमासस्य पञ्चविंशतितारिकाया स्तवनमिद पूर्णतामभजत् ।

सृष्टिमूलस्तवनम्

प्रातस्स्मरामि नवनीतविनीतचौर
वृन्दावने विहितहासविलासलास्यम् ।
वेणुप्रणादहृतचेतनचित्तवृति
पीताम्बर प्रथममङ्गलसृष्टिमूलम् ॥१॥

सृष्टि के मूलपुरुष, शाश्वत मङ्गलायतन, वशीध्वनि से प्राणियो की चित्त-वृत्ति को चुरा लेने वाले, वृन्दावन मे हास एवं विलासयुक्त रासक्रीडा रचाने वाले तथा माखन के भयभीत चौर 'पीताम्बर' (श्रीकृष्ण) को प्रातर्वेला मे स्मरण करता हूँ।

चारित्र्यदीप्तिचमत्कृतस र्लोक
पापापनोदनरत जनर नाय ।
रोषारुणायतदृ ऽऽहृतवैरिवंश
म यन्दिनं जनकजापतिमेव वन्दे ॥२॥

चारित्र्य-कान्तियो से समस्त भूलोक को चमत्कृत (विस्मित) कर देने वाले, लोक-रञ्जन के लिये पापनिवारण मे लगे हुए तथा रोष के कारण अरुणिम और विस्तृत दृष्टि द्वारा शत्रुवश का विनाश कर देने वाले ीतापति श्रीराम की वन्दना मध्याह्न-वेला मे करता हूँ।

साय स्मरामि कमलालयमात्मसंस्थं
कल्पान्तशायिनमुदारविचाररम्यम् ।
- भूभारभङ्गनिपुण विविधावतारं
विष्णु विरञ्चि मदनारिशचीन पूज्यम् ॥३॥

लक्ष्मीरूपी (एकमात्र) आश्रय वाले, आत्मलीन, प्रलयवेला मे शयन रने वाले, उदार आचरणो से सुशोभित, भूभार का अपहरण करने मे समर्थ,

मत्स्यकूर्मादि विविध अवतारो वाले तथा ब्रह्मा, शङ्कर एवं शचीपति (इन्द्र) के पूज्य नारायण स्मरण सान्ध्यवेला मे करता हूँ।

रूपैर्नृसिंहजलमत्स्यवराहकूर्मैः
हंसादिकैरसकृदाहितपुण्यमुर्व्याम् ।
लीलापर त्रिविधयोगविधानलक्ष्य
रात्रौ स्मरामि सततं तमहं भवेशम् ।।४।।

नृसिंह, जलमत्स्य, शूकर, कच्छप एव हंसप्रभृति रूपो से भू-मण्डल मे अनेकश पुण्यसस्थापना करने वाले, लीलापुरुषोत्तम तथा ज्ञान, भक्ति एवं कर्म—इन त्रिविध योगो के लक्ष्यभूत उस परमेश्वर को मै निरन्तर रात्रिवेला मे स्मरण करता हूँ।

निश्चेष्टितेऽपि भुवने मृदु चेष्टमान
सुप्तेन्द्रियेष्वपि परां गतिमादधानम् ।
आ न्तमध्यरहितं पुरुष पुराण
निद्राविधौ कमलनाभमह समीडे ।।५।।

लोक के चेष्टारहित हो जाने पर भी कोमलभाव से चेष्टा करने वाले, इन्द्रियार्थों से विरहित प्राणियो मे भी श्रेष्ठ गतिशीलता (श्वासादि जीवन-क्रिया) को धारण करने वाले, प्रारम्भ-मध्य एव अन्त मे परे, चिरतन पुरुष, भगवान् पद्मनाभ की मैं निद्रावस्था मे उपासना करता हूँ।

विज्ञाय यं निरि लमेव भवत्यधीत
ज्ञाते यथैककनके श्रुतिकुण्डला म् ।
रूपाभिधानरहित विभुमप्रमेयं
सत्यं मृषा जगति जागरणेऽभिवन्दे !!६।।

जिस परमेश्वर का स्वरूप जान कर कुछ ही विज्ञात हो उठता है जैसे एक सुवर्ण का जान लेने पर (सुवर्णरचित) कर्णभूषण आदि पदार्थ! नाम तथा रूप से रहित, मिथ्या जगत् मे भी सत्यस्वरूप, उस अज्ञेय विभु की वन्दना मै जागरण मे करता हूँ।

मायाप्रव नविमोहमतिभ्रमाद्यैः
सम्प्रेर्य कौतुकसुख गमयत्यनल्पम् ।
कस्मै कुतोऽपि किमपि क्वचिदप्यबुद्ध
स्वप्नेऽपि येन भवति प्रणतोऽस्मि तस्मै ।।७।।

(जो ईश्वर) अज्ञान, प्रवञ्चना, मूर्खता, एव मतिभ्रम आदि उपायो से प्रेरित कर (लोगो को) प्रभूत कौतुक-सुख तक पहुँचाता है और जिसके कारण किसी भी व्यक्ति के लिये, कही से भी, किसी स्थान पर, स्वप्न मे भी, अतर्कित कुछ (लाभ) सभव हो उठता है, मै उसके प्रति प्रणत हूँ ।

नित्य स्मरामि सुखदुःखवितानयोनि
नक्षत्रपुञ्जरचिताभरणातपत्रम् ।
ब्रह्माण्डमण्डनपद चरिताभिराम
क्षीराब्धिशायिनमपारललामलीलम् ।। ।।

सु एव दुख के विस्तार-मूल, नक्षत्रसमूह से विनिर्मित अलङ्करणभूत आतपत्र (चँदोवा) वाले, ब्रह्माण्ड के विभूषण-स्वरूप, लीलाभिराम तथा असख्य मनोमुग्धकारी लीलाओ वाले, क्षीरसागरशायी को नित्य स्मरण करता हूँ ।

शङ्खचक्रगदापद्मवनमालाविभूषितम् ।
श्रेयसामेकमूल त वन्दे विष्णु सुरप्रियम् ।।९।।

शङ्ख, सुदर्शन चक्र, कौमोदकी गदा, कमलपुष्प तथा वनमाला से अलकृत, कल्याणपरम्पराओ के एकमात्र कारण उन देवाभिमत विष्णु की वन्दना करता हूँ ।

शरणागतरक्षायै कृतवात्सल्यवर्षणम् ।
चतुर्भुज सदा वन्दे नीलाचलकलेवरम् ।।१०।।

शरणागतो की रक्षा के निमित्त वात्सल्यप्रेम की वर्षा करने वाले, चार भुजाओ वाले तथा नीलगिरि के समान (श्यामल) देह वाले विष्णु की सदैव वन्दना करता हूँ ।

पाहि मा कमलाकान्त ! प्रणत क्लेशपीडितम् ।
त्वत्कृपामात्रपाथेय त्वत्पर त्वन्मय सदा ॥११॥

हे श्रीपते ! क्लेशपीडित, भवदीय कृपामात्र अवलम्बन वाले, आपके सहारे जीवित तथा आप मे ही विलीन, मुझ विनयावनत को सदैव रक्षित करिये ।

मृदुनयन मृदुवदनं मृदुवीक्षण कृपायतनभूनञ्च ।
मृदुवचन मृदुचरित मृदुसर्वाङ्ग कमपि वन्दे ॥१२॥

कोमल नेत्रो वाले, कोमल मुखमण्डल वाले, कोमल दृष्टियो वाले, दयालुता के भाण्डागार, कोमल वाणी वाले, कोमल व्यवहारो वाले तथा कोमल समस्त अङ्गो वाले किसी देवता (विष्णु) गी वन्दना करता हूँ ।

वसुदृग्गगनदृगब्दे श्रावणमासे शुभेऽह्नि कविजाते ।
स्फुरितमिद ह्यनुभूत कविनाऽभिराजराजेन्द्रेण ॥१३॥

वसु (आठ) दृक् (दो) गगन (शून्य) तथा दृक् (दो) संज्ञक विक्रमसवत् (२०२८) मे श्रावण मास मे शुक्रवार के शुभदिन कवि 'अभिराजराजेन्द्र' द्वारा यह सस्फुरण अनुभव किया गया ।

पुरुषोत्तमप्रीणनम्

आयासैर्नवनीतलेपितमुखं मन्दस्मितोपायनं
जानुभ्यां विलुठन्तमात्मयतनं चञ्चद्रणन्नूपुरम् ।
खेलाभिर्जनितावरोधपुलकं पूर्णेन्दुशुभ्राननं
वन्दे दाशरथिं विलोलनयनं बालं श्रितायोध्यकम् ।।१।।

परिश्रमपूर्वक माखन से लिपे-पुते मुख वाले, मन्द मुस्कान रूपी उपहार वाले, घुटनों के बल विलुण्ठित होते हुए, अपने ही प्रयत्नों से परिपूर्ण, शोभायमान तथा खनखनाती हुई पैंजनियों वाले, क्रीडाओं से अन्तःपुर मे आह्लाद उत्पन्न करने वाले, पूर्णचन्द्र के समान धवल (दीप्त) मुखमण्डल वाले, चञ्चलनयन तथा अयोध्यापुरी का आश्रय लेनेवाले, शिशु दशरथनन्दन की वन्दना करता हूँ ।

कर्णान्तायतचण्डचापचलितोट्टङ्कारघोरस्खलन्
मारीचप्रभृतिप्रचण्डदनुजश्वासक्रियं सक्रियम् ।
दीप्यद्घर्मजलैकभूतचिकुरं सिंहोन्नतं सानुजं
विश्वामित्रमखावरोधिनिधनं वीरेश्वरं प्रार्थये ।।२।।

कान तक खींचे गये भयङ्कर धनुष से उत्पन्न भयावनी टङ्कार से मारीचादि दारुण दैत्यो की श्वासक्रिया को सस्तम्भित कर देने वाले, क्रियाशील, देदीप्यमान स्वेदबिन्दुओ से भीगे हुए केश-कुन्तलो वाले, सिंह की भाँति उन्नत तथा महर्षि विश्वामित्र के यज्ञविरोधियो के कालस्वरूप, (अनुज) लक्ष्मण से युक्त वीरेश्वर श्रीराम की वन्दना करता हूँ ।

लङ्केशादिमृषोद्यमप्रहननैः पैनाकवृत्ते गते
आनन्दामृतनिर्झरे प्रविततेे स्रग्दानलीलाविधौ ।
वैदेहीमवलोक्य वेपथुमती मुत्सम्भ्रमव्रीडिता
स्यान्नेत्रा लचुम्बिनी जनकजाजानेर्निसर्गच्छविः ।।३।।

रावण-प्रभृति नरपतियो के व्यर्थ उद्योगो का विनाश हो जाने से शि - धनुर्भङ्ग-वृत्तान्त भी समाप्त हो जाने पर, आनन्दरूपी अमृत के झरने की भाँति (सीता एव राम के परस्पर) जयमाल पहिनाने की विधि प्रवर्तित होने पर, जनकनन्दिनी को निहार कर—प्रमोद एव सम्भ्रम से संकुचित हो उठने वाली पसीने से लथपथ दशरथनन्दन राम की सहज सुन्दरता (मेरे) नेत्रा ल को चूमने वाली बने ।

ऊरीकृत्य वचोनिदेशमुरसा श्वोभाविमुद्गञ्जन
साकेताधिपतेर्नियम्य निखिल लोकानुकूलाधिकम् ।
लाभालाभजयाजयैकचरितोऽगाद्यत्सुखं कानन
सीतालक्ष्मणराजितं रघुपतिं त्यागैकवृत्ति भजे ।।४।।

प्रात घटित होने वाले, हर्षभञ्जक पिताश्री' के आदेश को हृदय से स्वीकार कर, लोकानुकूल (अपनी) समस्त मानसिक व्यथा को नियन्त्रित कर, लाभ-हानि तथा जय-पराजय मे एकसदृश आचरण रखने वाले जो (श्रीराम) सुख पूर्वक वन चले गये—सीता एव लक्ष्मण से अनुगत तथा त्यागरूपी एकमात्र स्वभाव वाले उन राघव की वन्दना करता हूँ ।

क्वासि प्रेयसि मैथिलि प्रतिवचो मे देहि चन्द्रानने
भो भ्रातस्सहकार नीप बकुल क्वास्ते मम प्राणदा ।
इत्येव मुषितप्रियार्थमबलोऽरण्ये रुदन्नैकधा
काकुत्स्थो ननु मादृशा रतिमता रागोपदेष्टा भवेत् ।।५।।

प्राणप्रिये सीते ! तुम कहाँ हो ? हे चन्द्रवदने ! मुझे उत्तर दो ! भैया सहकार (आम) अशोक, मौलसिरी ! मेरी प्राणेश्वरी कहाँ है ? इस प्रकार (रावण द्वारा) अपहृत भार्या के लिये दण्डकवन मे प्रचुर विलाप करने वाले विरही श्रीराम मुझ सरीखे विषयग्रस्त प्राणियो के रागोपदेष्टा बनें !

श्रुत्वाऽऽशोकवनोषिता जनकजां पाथोधिमुल्लङ्घ्य च
प्राकारैः परिवृत्य शत्रुनगरीं शाखामृगाणा व्रती ।
एकैकान् हतवान्समक्षसमरे पापिष्ठपुच्छान् प्रभुः
रौद्रं तच्चरितं दशाननकुलक्षत्येकलक्ष्य जयेत् ।।६।।

भार्या सीता को (रावण) अशोकवन-निवासिनी सुनकर, समुद्र को लाँघ कर तथा वानरसेना के परकोटे से शत्रुनगरी लङ्का को घेर कर तपस्वी राम ने सम्मुख युद्ध मे (रावणादि) नीच पापिष्ठो को एक-एक कर मार डाला। रावण का वश-विनाश ही जिसका एकमात्र उद्देश्य था ऐसा श्रीराम का वह रौद्र आचरण उत्कर्ष प्राप्त करे।

यस्मिन्पालयति क्षमा सुचरिते देवो ववर्षामृतम्
आरोग्य ववुराशुगा दशदिशो रेजु· प्रजामङ्गलैः।
सम्पत्तिञ्च ययुश्शुभा प्रकृतय·श्रीरामराज्यानुगां
राजेन्द्र रघुनन्दननु सततं धर्मासनस्थं भजे ॥७॥

शोभन आचरण वाले जिन श्रीराम के पृथ्वी-पालन करते समय देवराज इन्द्र ने अमृतवर्षा की, हवाओ ने आरोग्य प्रवाहित किया, दशो दिशाये प्रजा-कल्याण से सुशोभित हो उठी तथा प्रजाये रामराज्य का अनुगमन करने वाली शुभ समृद्धियो को प्राप्त हुईं, धर्मासन पर समारूढ उन राजराजेश्वर रघुनाथ की मैं निरन्तर सेवा करता हूँ।

कौलीनं रजकान्निशम्य मलिन तत्याज सद्यः प्रिया
वैदेही चिरसङ्गिनी सुललितामापन्नसत्त्वामपि।
वज्रादप्यतिनिष्ठुरस्सुमधुर· पुष्पादपि प्राञ्जल·
मर्यादापुरुषोत्तमो विजयता देव प्रजारञ्जन· ॥८॥

धोबी के मुँह से (सीताविषयक) ओछी लोकनिन्दा को सुनकर जिन्होने लावण्यमयी, गर्भभार-मन्थर, चिरसङ्गिनी वैदेही को तत्काल त्याग दिया—वज्र से भी अधिक कठोर तथा फूल से भी अधिक कोमल, प्राञ्जल तथा प्रजारञ्जक वही मर्यादापुरुषोत्तम स्वामी श्रीराम विजयी हो।

न मेऽस्ति शक्तिस्तव पादवन्दने
न वा प्रभो त्वच्चरिताभिशसने।
तथापि वाण्यास्सदकाण्डताण्डवं
नियन्त्रितु हीनबलोऽस्मि राघव !!९॥

हे प्रभो ! न तुम्हारी चरणचर्या मे मेरी सामर्थ्य है और न ही तुम्हारे चरित्र के अभिशसन (बखान) मे । हे राघव ! फिर भी वाणी के अनिन्दनीय (शोभन) अनवसर-नर्तन को रोक पाने मे असमर्थ हूँ ।

अनेन तुष्टिस्तव देव भूयसी
भवेन्न वा वेद्मि न मौढ्यमथर ।
तथापि निश्चप्रचमेतदुह्यते
मया नु दृष्ट दुरितापनोदनम् ॥१०॥

हे देव ! इस सस्तवन से आपको प्रभूत सन्तोष होगा या नही, मूढता से शिथिल मै (यह) नही जानता । फिर भी ऐक बात निस्सन्देह सोची जा सकती है (वह यह कि) मैने तो (अपने) पापो का विनाश देख लिया ।

आनीतश्शरणं राम ालिपुत्रोऽङ्गदो यथा ।
राजेन्द्रोऽपि तथोत्सङ्गेऽनाथोऽय नु विधीयताम् ॥११॥

हे राम ! जैसे बालिपुत्र अङ्गद (आप द्वारा) शरण मे ले आया गया, यह पितृहीन राजेन्द्र भी उसी प्रकार गोद मे ले लिया जाय ।

वसुदृग्गगनदृगब्दे श्रावणमासेशुभेऽह्नि रविजाते ।
स्तवनमिदं विस्तीर्णं कविनाऽभिराजराजेन्द्रेण ॥१२॥

वसु (आठ) दृक् (दो) गगन (शून्य) तथा दृक् (दो) स विक्रम-संवत् (२०२८) मे, श्रावण मास मे, रविवार के शुभदिन मे कवि 'अभिराजराजेन्द्र' द्वारा यह स्तवन प्रणीत किया गया ।

दुकूलचौरचरितम्

यमुनातटकेलिकलानिपुणं वृषभानुसुताश्रितवामपदं
नवनीलबलाहकचारुतनु कलया हृतकामकुमारमदम्।
वरवेणुनिनादपरम्परयैव वशीकृतलोकमुदारवर
मधुराधिपतिं कलयामि मुदा व्रजबल्लवदारदुकूलहरम् ॥१॥

कालिन्दी-तट पर होने वाली केलि-कलाओ मे निपुण, राधिका द्वारा सेवित बायें चरण वाले, नवीन जलधर के समान शोभन शरीर वाले, कला-विलासो से नवीन कन्दर्प (काम) के दर्प को खण्डित कर देने वाले, प्रशंसनीय वशीध्वनियों से ही त्रैलोक्य को वशीभूत कर लेने वाले, उदार तथा श्रेष्ठ, व्रजाङ्गनाओ के दुकूल-वसनो का अपहरण करने वाले मथुराधिपति कृष्ण को प्रसन्नता पूर्वक प्रणाम करता हूँ।

मुकुटीकृतचन्द्रकिचारुशिखं विशिखीकृतलोचनलोलगतिं
उररीकृतपीतपटावरणं विजडीकृतसंसृतिहेयसृतिम्।
जननीतिहर जननीतिकर नवनीतहरं नवनीतिकरं
वसुदेवसुतं कलयामि मुदाऽऽशिशुपालमहं प्रविलीनजरम् ॥२॥

मयूरों की रम्य शिखा (कलापाग्रभाग) का मुकुट बनाने वाले, नेत्रो की चपल गति अर्थात् चञ्चल कटाक्षो को विशिख (बाण) बनाने वाले, माँ देवकी की ईतियो (दैवी-भय) का विनाश करने वाले, प्रजोपकारक नीतियो का विस्तार करने वाले, माखनचोर, नूतन व्यवस्थाओ के कर्ता, वार्द्धक्य से अप्रभावित, शिशुपाल-वैरी भगवान् वासुदेव को प्रसन्नतापूर्वक प्रणाम करता हूँ।

निहतामितवैरिकुल वयसि प्रथमे हृतदारुणकसभय
गिरिधारणधिक्कृतवज्रिमद विकलीकृतकालियरोषरयम्।
मधुसूदनमाधवनन्दसुताच्युतकेशवकृष्णपदैकचर
नटनैकपर कलयामि मुदा रसरीतिकरं भवभीतिहरम् ॥३॥

युवावस्था मे हैं। असख्य वैरियो के विनाशक, क्रूर कस के भय को नष्ट करने वाले, गोवर्धन गिरि को उठाने मात्र से पुरन्दर के गर्व को चूर कर देने वाले, कालिय नाग के क्रोधवेग को मन्द कर देने वाले, मधुसूदन-माधव-नन्दसूनु-अच्युत-केशव तथा कृष्ण नामो मे सम्बोधित, रसरीतिदायक तथा सासारिक भयो के विनाशक नटवर-नागर को प्रसन्नतापूर्वक प्रणाम करता हूँ।

कृतवञ्जुलपीलुकदम्बकरीरनिकुञ्जकुटीरदिवाशयन
वृषभानुजया सह संल्लपनैर्मदिरायितहारिचलन्नयनम् ।
मृदुशीतलमन्दसुगन्धसमीरणसेवितसौम्यतनु मधुर
यदुवशरविं कलयामि मुदा युधि पार्थपितामह.ोषकरम् ॥४॥

वञ्जुल (वेतस लता) पीलु, कदम्ब तथा करील वृक्षो के कुञ्जरूपी कुटीरों मे राधिका के साथ मधुर वार्ता करते हुए, दिवाशयन करने वाले, मदिर-आकर्षक एवं चपल नेत्रो वाले, कोमल-शीतल-मन्द तथा सुरभित पवन से सुसेवित सौम्य शरीर वाले, मधुर-स्वभाव तथा समराङ्गण मे अर्जुन के पितामह (गङ्गापुत्र भीष्म) को सन्तुष्ट करने वाले, यदुवंश-भानु श्रीकृष्ण को प्रसन्नता-पूर्वक प्रणाम करता हूँ।

ललितं जनन ललित चरित ननु तादृशमेव तिरोभवन
दलितोद्धरणस्य शुभाचरणस्य बलानुजकस्य लसच्छ्रवणम् ।
कटुमोहमलीमसगञ्जनक जनक भुवनस्य विधानकरं
परिपूर्णमृगाङ्कमहं कलयामि मुदा सतत विधुवशवरम् ॥५॥

दलितो का उद्धार करने वाले तथा पवित्र आचरणो वाले जिन बलराम के अनुज का श्रवण-सुखद जन्म ललित था, लीला-विलास ललित था और परमधाम-गमन भी निश्चय ही उसी प्रकार का था। कटु एव मलिन अज्ञान के विनाशक, त्रिलोकी की सृष्टि एव व्यवस्था करने वाले, चन्द्रवशावतस उन्ही पूर्णचन्द्र श्रीकृष्ण को निरन्तर प्रसन्नतापूर्वक प्रणाम करता हूँ।

वितत शुभपर्व यथारुचि येन कृत शुभकर्म शुभाचरण
कलितं भुवि येन निराकरणैरधिकारमदस्य नयाभरणम् ।
मकराकृतिकुण्डलमण्डनमण्डितकर्णतटं रविजाशफर
मुचकुन्दसख कलयामि मुदा सुमुखं कलिकालजदम्भहरम् ॥६॥

जिसने अपनी रुचि के अनुकूल (गोवर्धनपूजा सरीखे) पवित्र महोत्सव का आयोजन किया, शुभकार्यो एव शुभ-आचरणो को सम्पन्न किया, जिसने अधिकार-मद के विनाशकार्यो द्वारा भूतल मे अलङ्कार-स्वरूप न्याय का प्रतिष्ठित किया—यमुना-जल मे विहार करने वाले, महाराज मुचकुन्द की मित्रता से युक्त, कलियुगीन दम्भो का विनाश करने वाले तथा मकराकृति कुण्डलो के आभूषण से विभूषित कर्णप्रान्त वाले उन्ही सुमुख माधव को प्रसन्नतापूर्वक प्रणाम करता हूँ ।

जनकद्वितयं जननीद्वितयं रमणीद्वितयं वसतिद्वितयं
द्वितयेऽपि रराज मदाऽद्वय एव भुवविदधत् कलधौतमयम् ।
न सुखेन सुख न विपद्विपदा नृवरस्य बभूव न कि सुकरं
भुवनाधिपतिं कलयामि मुदा प्रणतप्रणयामृतपानपरम् ॥७॥

(नन्द एवं वसुदेव) दो पिता, (यशुदा एव देवकी) दो मातायें, (राधिका एव रुक्मिणी) दो प्रियतमाये तथा (गोकुल-द्वारका) दो निवास स्थान ! समग्र भूमण्डल को स्वर्णिम बनाते हुये, जो मधुसूदन इस 'द्वैधभाव' मे भी सदा 'समभाव' (द्वैधरहित) बन कर सुशोभित रहे । जिन योगिराज को न सुख से सुख मिला और न विपत्ति से दुख ! उन पुरुषश्रेष्ठ के लिये भला कौन कार्य सरल नही हुआ ? भक्तजनो के प्रणयरूपी अमृत का पान करने में आसक्त उन्ही भुवनाधिपति कृष्ण को प्रसन्नतापूर्वक प्रणाम करता हूँ ।

वनमालिनमाहितपीतपटंधृतनन्दकशङ्खरथाङ्गगदं
भवसन्तरणाय तरीसदृश स्वजनीकरणाय निरीतिपदम् ।
सगुणोऽप्यगुणस्सुमतोऽप्यमतस्सुविदामिति रूपविवादहरं
भगवन्तमहं कलयामि मुदा विधुरीकृतमत्वलुषानुचरम् ॥८॥

'सगुण होकर भी निर्गुण है, भलीभाँति ज्ञात होते हुए भी जो अनुभवातीत है—शास्त्रज्ञो के लिये' इस प्रकार स्वरूपविषयक विवाद को समाप्त करने वाले पीताम्बरधारी, वनमाला-विभूषित, खड्ग-शख-चक्र एव गदा धारण करने वाले, ससार-सागर को पार करने के लिये नौका सदृश, परकीयजनो को अपनाने के लिये सुरक्षित आश्रय तथा अपने कलुष-कुटुम्ब का विध्वस करने वाले भगवान् कृष्ण को मैं प्रसन्नता पूर्वक प्रणाम करता हूँ ।

वृन्दारण्ये सखीभिस्सह सुरतरतोऽलौकिको भक्तियोगी
द्वारावत्या प्रवृद्धश्शतमिततनयै' कर्मयोगावलम्बी ।
युद्धक्षेत्रे कुरूणा श्रुतिवर चनैर्ज्ञानयोगोपदेष्टा
भूयान्मद्योगयोगी भुवनभरहरस्साम्प्रत चक्रपाणि ॥९॥

वृन्दावन मे राधिकाप्रभृति प्रणयिनियो के साथ कन्दर्पकेलियो मे निरत होकर जो विलक्षण भक्तियोगी बने, द्वारकापुरी मे सैकडो पुत्र-पौत्रो से अन्वित होकर जिन्होने कर्मयोग का अवलम्बन लिया, कुरुओ के समराङ्गण मे शास्त्रसम्मत श्रेष्ठ उपदेशो द्वारा जो ज्ञानयोग के व्याख्याता बने, लोकरक्षक वही चक्रपाणि अब मेरी कर्तव्यनिष्ठता के प्रेरक बने ।

राधिकेश कृपासिन्धो दीनोद्धरणतत्पर !
मामुद्धर जगन्नाथ ! दुर्जनैरभिशापितम् ॥१०॥

हे राधिकेश, कृपासिन्धु, दीनरक्षापरायण ! हे जगन्नाथ ! दुर्जनो द्वारा अभिशापित मुझे अवलम्ब प्रदान करिये !!

वसुदृग्गगनदृगब्दे श्रावणमासेऽसितेऽह्नि बुधजाते ।
चरितमिद विस्तीर्णं कविनाऽभिराजराजेन्द्रेण ॥११॥

वसु (आठ) दृक् (दो) गगन (शून्य) तथा दृक् (दो) सं विक्रमसवत् (२०२८) मे, कृष्णपक्षीय श्रावण मास के बुधवार को यह 'दुकूलचौरचरित' कवि 'अभिराजराजेन्द्र' द्वारा प्रकाशित किया गया ।

पिशाचभञ्जनम्

चञ्चच्चामीकराभप्रथितदिनमणि वामनीकृत्य नून
शुष्यत् त्रैलोक्यपल्ली पुनरपि कृपयाऽऽशोकवल्लीश्चकार ।
चण्डक्रोधोऽप्रमेयो विनयप‍ुरपि प्राणिरक्षाव्रताद्यै
सोऽस्मत्तापप्रहाणे प्रभवतु नि.ंरामाञ्जनेयोऽनुकूल ॥१॥

धधकते हुए स्वर्ण के समान कान्तिमान् सूर्य को पूर्णतः निगल कर, म्लान होती हुई ग्राम सरीखी त्रिलोकी को पुन कृपापूर्वक जिन्होने 'अशोकवल्ली' बना दिया, जो प्रचण्ड रोष वाले तथा अप्रमेय है, जो प्राणिरक्षा-व्रतादि कार्यों से विनयपटु है, वही कृपालु आञ्जनेय (हनुमान्) हमारे दुखों का नाश करने में निरन्तर समर्थ हो ।

दीप्यत् सिन्दूररागारुणनिखिलतनुं पीनकौपीनभूषं
शान्त रामानुरक्त्या तरुणरविनिभ स्फीतलाङ्गूलशस्त्रम् ।
दैतेयध्वसशंस प्रणतसुरतरुं मैथिलीमानमूलं
वन्दे प्राभञ्जनिन्तं प्रतिपलमिडया स्वागसां भञ्जनाय ॥२॥

देदीप्यमान सिन्दूर के रंग से उपलिप्त सम्पूर्ण विग्रह वाले, विस्तृत कौपीन रूपी वस्त्राभूषण वाले, श्रीराम के प्रति अनुराग होने के कारण शान्त, बालसूर्य के समान (दीप्तिमान्) शुभ्र लाङ्गूल रूपी आयुध वाले, राक्षसो का विनाश करने मे प्रशसाप्राप्त, शरणागतो के कल्पतरु तथा वैदेही की मानरक्षा करने मे समर्थ वायुपुत्र हनुमान् को, अपने पापो के विनाशार्थ, मैं प्रतिपल स्तुतियो द्वारा मर्चित कर रहा हूँ ।

दोर्दण्डप्रत्नशौर्यस्मरणपुलकितस्सिन्धुझम्पाप्रयासे-
नेकेनैव प्रमोद्य प्रणतसखचरान् वानरर्क्षादिवीरान् ।
राम रामावियोगप्रचुरजलनिधौ मग्नमुन्नेतुकामो
मद्व्याध्याधीन् प्रहन्तु स भवतु विजयी रुद्रसूनुर्जयाङ्कः ॥३॥

भुजदण्डो के निसर्ग-पराक्रम का स्मरण हो जाने से पुलकित, सागर मे लगाई गई छलाँग के एक ही प्रयास से विनीत मित्रो, वानरो एवं ऋक्षादि वीरो को आह्लादित करके, वैदेही-वियोग रूपी अथाह सागर मे डूबे हुए श्रीराम को उबारने के लिये कटिबद्ध, जयशील वह रुद्रपुत्र हनूमान् मेरी शारीरिक एवं मानसिक व्यथाओ को विनष्ट कर देने मे समर्थ हो।

वेल्लद्बाहुप्रहारप्रहतशतशतद्विट्कदम्बोऽविलम्ब
गर्ज्जद्द्रष्टाकरालप्रसृतकिटकिटापूरसम्पूरिनाश ।
कश्चित्पादापघातैः कमपि च विदलन्मुष्टिनिष्पीडनाद्यै
लङ्कावीरो मदीय शमयतु दुरितं दत्तरामानुजासुः ।।४।।

थिरकती हुई भुजाओ के प्रहार से शत-शत शत्रु-समूह को, क्षण भर मे विनष्ट करने वाले, गर्जना करती हुई भयानक दाढो की किटकिटाहट से दिगन्तो को व्याप्त कर देने वाले, किसी (वैरी) को चरणप्रहारो से और किसी को मुष्टिपेषण आदि द्वारा विदलित करते हुए, सुमित्रानन्दन लक्ष्मण को प्राणदान देनेवाले लकाविजयी हनूमान् मेरे पाप का शमन करें।

सा मे माङ्गल्यदात्री भवतु छविझरी कापि दोषापनेत्री
माहावीरी समाधिस्थितमुनिसदृशी सर्वसिद्धिप्रदात्री।
सान्द्रानन्दैकमूलं द्विनयनसलिल रामभक्तिप्रसूतं
नैरन्तर्येण यस्यां प्रवहदिव समालोक्यते सिद्धयोगैः ।।५।।

समस्त सिद्धियो को प्रदान करने वाली, दोषापहारिणी तथा समाधिलीन मुनि-सरीखी पवनपुत्र हनूमान् की वह विलक्षण पुञ्जीभूत सुन्दरता मेरे लिये मङ्गलदायिनी बने जिसमे अजस्र आनन्दमात्र से उत्पन्न, श्रीराम की भक्ति से कन्दलित, नयनयुगल की अश्रुधारा निरन्तर स्रवित होती हुई सी साधको द्वारा देखी जाती है।

वन्दे सुग्रीवमित्र नियुतगजबल लङ्किनीलोचनघ्न
लङ्कालङ्कारनाशप्रथितमखविधिप्राप्तदीक्षापरीक्षम्।
वात्याचक्राशुवेग विकटविपदरि वीरवशावतसं
हंस श्रीरामगाथामृतसलिलनिधे रावणं रावणस्य ।।६।।

वानरराज सुग्रीव के मित्र, हजारो हाथियो के समान बलवाले, लङ्किनी की आँखो के समक्ष (मुष्टिका-प्रहार से) अन्धकार उत्पन्न कर देने वाले, लङ्कापुरी के सौन्दर्यविनाश रूपी महनीय यज्ञविधि मे दीक्षाव्रत अगीकार करने वाले, वात्याचक्र (आँधी) के समान तीव्र वेग वाले, दारुण विपदाओ के शत्रु, शूरशिरोमणि, श्रीरामचरित रूपी अमृतसिन्धु के राजहस तथा रावण के भी 'रावण' (विद्रावक) हनूमान् को प्रणाम करता हूँ।

यद्भ्रूभङ्गप्रभावैरघटितघटनञ्चाप्युपैत्यक्षतत्वं
कल्पायुष्याय तस्मै प्रणतिततिमिमा सादर वेदयामि ।
स्वप्ने स्वापे प्रबोधे सुललितकवने रोदने जल्पने वा
आप्राणान्त नितान्तं कलयतु हृदयम्मे कृपालुर्हनूमान् ।।७।।

जिसके कटाक्ष-सकेतो से असम्भव घटना भी अमृतत्व को प्राप्त कर लेती है उन कल्पजीवी पवनपुत्र के लिये यह प्रणामाञ्जलि सादर निवेदित कर रहा हूँ। कृपालु हनूमान्—स्वप्न, निद्रा, जागरण, रमणीय काव्य-रचना, रोदन अथवा असम्बद्ध भाषण मे—मृत्युपर्यन्त मेरे हृदय को अतिशय भावित करते रहे।

हुं हुं हुङ्कारनादैश्शकलय सकलं मामकीनप्रतीप
बन्धान् छिन्धि प्रगूढान् गणय जनमिमं वत्सकल्पातिभीतम् ।
धिग्धिग्धिक्कारवाभिस्सततगतिसुत द्वेषभाजोऽपनीय
पीयूषप्राणवृत्त्या मृदुलयितुमिद जीवन प्रक्रमेथाः ।।८।।

हुँ हुँ हुङ्कारनाद से मेरे समस्त विरोधो को खण्डित कर दो। मेरे अतिशय कठोर बन्धनों को काट दो। शिशुतुल्य तथा अत्यन्त डरे हुए इस आत्मीय जन को कृपान्वित करो। हे वायुनन्दन! धिक्-धिक् वचनो से मेरे विद्वेषियों को खदेड कर, अमृतमयी सञ्जीवनी-शक्ति से (मेरे) इस जीवन को मधुर बनाने के लिये आपको यत्न करना चाहिये।

नाहं तथा कलितवाग्विभवोऽस्मि यस्मा-
त्त्वत्पूतविक्रमकथामनुगातुमीहे ।
अज्ञातगु नकलापट्टभृङ्गभङ्ग—
स्तस्मान्निसर्गकलयैव सभाजयामि ।।९।।

हे प्रभो ! मै वाग्वैभव का अतिशय धनी-मानी नही हूँ कि जिससे आपकी पवित्र शौर्यकथा को गाने की इच्छा कर रहा हूँ। इसलिये स्वाभाविक गुञ्जन-कला मे प्रवीण भ्रमर के ही समान कौशल वाला मैं (भी) सहज रीति से ही (आपका) अभिनन्दन कर रहा हूँ।

देव प्ररूढविभवोऽसि कृपैकसिन्धु.
बाधाविनाशविलयोऽसि नतैकबन्धु. ।
मद्भागधेयमपि गर्तगतं प्रलीन
प्रोद्धृत्य दीपय युगाङ्घ्रिसमर्चनाय ॥१०॥

हे देव ! तुम समृद्ध ऐश्वर्य वाले हो, दया के एकमात्र सागर हो, 'सङ्कट-मोचन' रूपी सस्तवन के अधिकारी हो, भक्तजनो के एकमात्र सहायक हो। हे नाथ ! अपने चरणयुगल की (मेरे द्वारा) समर्चना हेतु गर्त मे पडे हुए तथा सकटापन्न मेरे भाग्य को भी समुन्नत करके, प्रकाशित कर दो !

पिशाचभञ्जनस्तोत्र सर्वशत्रुनिषूदनम्
आञ्जनेयप्रभावेण प्रणतेष्टकर भवेत् ॥११॥

समस्त वैरियो का विध्वस करने वाला यह 'पिशाचभञ्जन' स्तोत्र भगवान् हनूमान् की कृपा से भक्तजनो का अभीष्ट साधक बने ।

वसुदृग्गगनदृगब्दे श्रावणमासेऽसितेऽह्नि बुधजाते ।
याच्ञाष्टक प्रणीत कविनाऽभिराजराजेन्द्रेण ॥१२॥

वसु (आठ) दृक् (दो) गगन (शून्य) तथा दृक् (दो) संज्ञक विक्रम-सवत् (२०२८) मे, शुक्लपक्षीय श्रावणमास मे, बुधवार के दिन यह 'याचनाष्टक' कवि 'अभिराजराजेन्द्र' द्वारा प्रणीत किया गया ।

मधुराभिधानम्

रामकथाऽमृतपूतशरीरः कवनविजनमृदुमलयसमीरः ।
प्रथमकविर्जयतादभिरामो निहितहृदयरघुकुलमणिरामः ।।१।।

श्रीरामचरितामृत से पवित्र व्यक्तित्व वाले, कविताटवी के कोमल मलय-समीर तथा हृदय मे रघुकुलतिलक श्रीराम को बसा लेने वाले, प्रशसनीय आदिकवि (वाल्मीकि) की जय हो ।

अष्टादशपुराणकर्त्तारं सारस्वतसृतिपारावारम् ।
वन्दे तमपवर्गसोपानं द्वैपायनमुनिमभिनवमानम् ।।२।।

अट्ठारह पुराणो के रचयिता, काव्यधारा (सरिता) के समुद्र, मोक्षपदवी के सोपान (सीढी) तथा विलक्षण मान्यताओ वाले उन द्वैपायन मुनि (व्यास) को प्रणाम करता हूँ ।

शाकुन्तलकथयेरितलोको रघुवशेन निहृतकविशोकः ।
ऋतुकुमारमेघैर्वृतलाभ. कविकुलगुरुर्जयतु महिताभ. ।।३।।

अभिज्ञान-शाकुन्तल की (रम्य) कथा से ससार को प्रेरणा देने वाले, रघुवश महाकाव्य (की रचना) से 'कवि-शोक' को तिलाञ्जलि देने वाले, ऋतुसहार-कुमारसम्भव तथा मेघदूत सरीखी कृतियो से (कीर्ति) लाभ का वरण करने वाले तथा पवित्र काव्यप्रतिभा वाले कविकुलगुरु कालिदास की जय हो !

अङ्गीकृतशुभवृत्तकिरात लघुकथयापि विततरसवार्तम् ।
चित्रकाव्यपथपथिकमुदार भारविमभिवन्दे सुविचारम् ।।४।।

किरात (वेषधारी भगवान् शिव) की पवित्रकथा का आश्रय लेने वाले

कथानक लघु होने पर भी सरस कथनोपकथन का विस्तार करने वाले, चित्र-काव्य-शैली के पक्षधर, अर्थगौरव-सम्पन्न उदारकवि भारवि को प्रणाम करता हूँ।

कादम्बरीकथाश्रिततत्त्व सहृदयपरिषदि कलितमहत्त्वम् ।
भुवि जयतादमृत बिभ्राणः कविकुलकुमुदकलाधरबाणः ।।५।।

कादम्वरी-कथा द्वारा अवलम्बित तत्त्ववाले, सहृदयजनो की मण्डली मे प्रशसित महिमा वाले 'काव्यामृत' को धारण करते हुए, कवि-सम्प्रदाय रूपी कुमुदो के आह्लादक-चन्द्र सदृश श्री बाणभट्ट लोक मे सर्वोत्कर्ष प्राप्त करें।

कोमलकान्तपदावलिरम्य करुणरसस्थापनमूर्द्धन्यम् ।
मधुरमसृणनवभावविभूतिं सततमुपैमि सुकविभवभूतिम् ।।६।।

कोमल तथा कान्त (सुमनोहर) पदावली के कारण रम्य, करुण रस की (सर्वोपरि) स्थापना मे अग्रगण्य, मधुर-कोमल तथा नूतन भावसम्पत्ति वाले श्रेष्ठ कवि भवभूति की मै निरन्तर प्रशंसा करता हूँ।

नवसर्गैः कृतशब्दविनाशो दर्शितभङ्गीभणितिविलासः ।
विलसतु जगति सुपण्डितमानी माघकवि कवितामृतदानी ।।७।।

(शिशुपालवध नामक महाकाव्य के) नौ सर्गो द्वारा ही (नवीन) शब्द-भाण्डार को समाप्त कर देने वाले, उक्तिवैचित्र्य के विलास (छटा) को प्रदर्शित करने वाले तथा काव्यामृत का दान देने वाले, महावैय्याकरण माघकवि भूमण्डल मे प्रशशा प्राप्त करें।

खण्डनखण्डखाद्यदार्शनिकः प्रोन्मेषैर्नवनवैस्सुधनिकः ।
कृतनैषधचरितामृतवर्षो जयतु जगति मामल्लजहर्ष ।।८।

ण्डनखण्डखाद्य (नामक अपन चूडान्त दर्शन-ग्रन्थ) के दार्शनिक, नई-नई (विलक्षण) बिम्बयोजनाओ के कारण अतिशय काव्यशक्तिसम्पन्न तथा नैषधीयचरित नामक महाकाव्य द्वारा अमृतवर्षा करने वाले, मामल्लदेवी के पुत्र महाकवि श्रीहर्ष जगती मे जय प्राप्त करें।

भासप्राकारमूद्ध्वं गगनपरिमितं दण्डिकुल्यं गभीरं
भट्टिश्रीभर्तृमेण्ठप्रवरतरुवृतं विज्जकासारिकं ।
मङ्खश्रीनीलकण्ठप्रमदपिकयुगं श्रीजगन्नाथहंसं
ईडे सूक्त्यालवालं सुकविजलधरश्यामलं काव्यकुञ्जम् ॥९॥

महाकवि भास ही जिसके गगनचुम्बी उच्च-प्राकार (चारदीवारी) है, जो गहरी (महाकवि) दण्डी रूपी कुल्या (खाई) वाला है, जो भट्टि-भर्तृमेण्ठ एवं प्रवरसेन रूपी वृक्षों से घिरा है, कवयित्री विज्जका ही जिसकी सारिका (मैना) है, महाकवि मंखक तथा नीलकण्ठ दीक्षित जिसके दो मदमत्त कोकिल है, पण्डितराज जगन्नाथ जिसके राजहंस हैं तथा जो सुभाषितों रूपी आलवालों (थाल्हों) से युक्त है—श्रेष्ठ कवियों रूपी जलधरों से श्यामायमान उसी 'काव्यकुञ्ज' की उपासना करता हूँ ।

काव्यामृतमिदं नव्यं कवीन्द्रस्तवनात्मकम् ।
भूयान्नवनवोन्मेषशालिनाम्मनसां मुदे ॥१०॥

श्रेष्ठ कविजनों की स्तुतियों से ओतप्रोत यह नवीन काव्यामृत नवनवोन्मेष-शाली सहृदयों के चैतसिक आनन्द का विधायक बने ।

वसुदृग्गगनदृगब्दे श्रावणशुक्ले शुभेऽह्नि सोमाख्ये ।
अष्टकमिदं प्रणीतं कविनाऽभिराजराजेन्द्रेण ॥११॥

वसु (आठ) दृक् (दो) गगन (शून्य) तथा दृक् (दो) संज्ञक विक्रमसंवत् (२०२८) के शुक्लपक्षीय श्रावणमास में सोमवार के शुभदिन कवि 'अभिराज-राजेन्द्र' द्वारा यह अष्टक निर्मित किया गया ।

मङ्गलायतनगीतम्

सिन्धुरवदन निखिलगुणमन्दिर जय हेरम्ब गणाधिपते !
मङ्गलसदन सु रजनिचन्दिर जय गिरिजाम्ब विरूढमते !!

गजराज के समान मुखवाले, समस्त गुणो के भण्डार, मङ्गलायतन, सौख्य-रजनी के चन्द्रस्वरूप, पार्वतीपुत्र, अपार बुद्धि वाले, हे गणाधिपति हेरम्ब ! आपकी जय हो !!

घनसुन्दर परमेश्वरनन्दन सुरमुनिवन्दित युगलचरण
मूषिकवाहन निपतितपावन धवलाम्बरधर शमितमरण
दुरितसलिलनिधिमथनमन्दर जय चतुराननवन्द्यगते !
जय हेरम्ब गणाधिपते ॥१॥

मेघ के समान शोभायुक्त, देवाधिदेव ङ्कर के पुत्र, देवो तथा मुनियों द्वारा समर्चित चरणयुगल वाले, चूहे की सवारी करने वाले, अतिशय कलङ्कितो को पवित्र करने वाले, विमल वस्त्र धारण करने वाले, मृत्युभय शान्त करने वाले, पाप रूपी समुद्र के मथनार्थं मन्दराचल-सदृश तथा ब्रह्मा द्वारा (भी) वन्दनीय गति वाले हे गणाधिपति हेरम ! आपकी जय हो !!

नवसिन्दूरपूरपरिभूषितगण्डयुगल समधिकतुन्दिल
सुनयन वचनचतुर लम्बोदर विघ्नेश्वर गजकर्ण कपिल
एकदन्त जय जगदवलम्बन गलभूषितवनमाल्यतते !
जय हेरम्ब गणाधिपते !!२॥

नवीन सिन्दूरराशि से विभूषित कपोलमण्डल-द्वय, अत्यधिक तुन्दिल, सुन्दर नेत्रोवाले, वाणीनिपुण, लम्बोदर, विघ्ननाशक, गज सदृश कानो वाले, धवल वर्ण वाले, एकदन्त, ससार के आधारभूत तथा कण्ठप्रदेश मे सुशोभित वनमालाओ वाले हे गणाधिपति हेरम्ब ! आपकी जय हो !!

प्रथमसपर्याहितविक्रम वैधातृकनियमैरनियत जय
स्मरणजनितविबुधायुधसन्निभपरमविचित्रकृपापथ जय
जनकोपम विकटोपम कामद विधुललाट जय भव्यसृते !
जय हेरम्ब गणाधिपते !! ३॥

प्रथम समर्चना के कारण प्रख्यात महिमा वाले, सासारिक नियमो (बन्धनो) से सर्वथा अनाबद्ध, स्मरण मात्र से अमोघ देवास्त्र सदृश अत्यन्त विस्मयकारी कृपापथ निर्मित कर देने वाले, अपने पिता (भगवान् शङ्कर) के समान, अप्रतिरथ, इच्छापूर्ण करने वाले, चन्द्रमा से विभूषित ललाट वाले तथा पार्वती रूपी सृति (जीवनशक्ति) वाले हे गणाधिपति हेरम्ब ! आपकी जय हो !!

जननगुरुवसतिगमनपरिणयनगमनागमनमरणधारण
अन्तरेण वन्दनमिह सिद्ध्यति न किमपि तव पतितोद्धारण
सिद्धिपरं मम महितमनोरथमनुकूलय कृतपुण्यरते !
जय हेरम्ब गणाधिपते !!४॥

पुत्रजन्म, विद्यारम्भ, विवाह, प्रवेश, निर्गम तथा मरण-संस्कारों को धारण करने वाले हे पतितपावन ! आपकी पूजा के बिना इस जगती मे कुछ भी सिद्ध नहीं हो पाता है। हे पुण्यप्रणयिन् ! सफलता की ओर उन्मुख मेरे प्रशंसनीय मनोरथ को (मेरे) अनुकूल करो। हे गणाधिपति हेरम्ब ! आपकी जय हो !!

सुकृतविनायक, रोपितसायक विघ्नमृगोपरि दैन्यदलन
अशरणशरण विनतजनर न दर्शितबहुलममत्वकलन
छिन्धि जडीकृतबन्धनमुपहर वाङ्मधु मोदकमूलभृते !
जय हेरम्ब गणाधिपते !!५॥

सुकृतो के उन्नायक, विघ्नरूपी हरिण के ऊपर शरसन्धान करने वाले, दीनता के विनाशक, असहायो के सहायक, विनयशील प्राणियो के शुभैषी, अतिशय ममत्व-विस्तार प्रदर्शित करने वाले तथा मोदक (लड्डू) एव कन्दमूल का भक्षण करने वाले हे गणाधिपति हेरम्ब ! मुझे वचनमाधुरी प्रदान करिये। मेरे कठोर बनाये गये बन्धनो को काटिये। आपकी जय हो !!

पशुपतिनन्दन सुरभितचन्दन सततसुवन्दन करुणकरुण
प्रत्यूहदलन निगमसुपण्डित गुणगणमण्डित तरुणतरुण
रिपुनाशाय निबद्धसुपरिकर करुणाकर जय विमलधृते !
जय हेरम्ब गणाधिपते !!६॥

शम्भुपुत्र, चन्दन को मँहकाने वाले, अनवरत वन्दना के पात्र, अतिशय कृपालु, बाधानिवारक, वेदो के महान् पण्डित, गुणसमूह से विभूषित, अतिशय तरुण (उत्साहसम्पन्न) शत्रु के विनाशार्थ फेंटा बाँध लेने वाले, दया के भण्डार तथा निर्मल मति वाले हे गणाधिपति हेरम्ब ! आपकी जय हो !!

कटुकपित्थजम्बूफलभक्षक नियुतसुलक्षण दयितनयन
मङ्गलमयवदनाधरभुजपदजघनजानुनखगमनशयन
किन्नरभूतपिशाचसुरासुरचारणकलित सुबुद्धचिते !
जय हेरम्ब गणाधिपते !!७॥

कैले कपित्थ (कैंथा) एव जामुन का भक्षण करने वाले, हजारो शोभन लक्षणो वाले, सुन्दर नेत्रो वाले, मङ्गलमय मुख, होठ, बाहुद्वय, चरणद्वय, कटि-प्रदेश, कुहनियो, नाखूनो तथा गमन-शयन क्रियाओ वाले, किन्नर भूत पिशाच देवता तथा राक्षस रूपी बन्दीजनो से सस्तुत, अतिशय जागृत चेतना वाले हे गणपति हेरम्ब ! आपकी जय हो !!

कविकर्मणि सद्य फलदायक परमसहायक धृतसयम
पाराशर्यवचनविकसन सुविलक्षण गलितविषयकर्दम
अघमपनोदय मामवलोकय पाहि विभो श्रुतसहजनते !
जय हेरम्ब गणाधिपते !!८!!

काव्यरचना मे तत्काल फल देने वाले, परम सहायक, संयमयुक्त, वेदव्यास के वचनो का विकास करने वाले, परम मेधावी, विषय-वासना के पङ्क से रहित तथा स्वाभाविक प्रणामाञ्जलि को स्वीकार करने वाले हे विभो ! पापो का विनाश कीजिये, मुझको (कृपापूर्वक) देखिये । हे गणाधिपति हेरम्ब ! आपकी जय हो !!

सततमेव भवन्तमुपैम्यहं
कलिकलाकलनाकरनाशन !
मयि दयानुविधेहि दयामय
प्रणय मङ्गलमङ्गल ! मङ्गलम् !!९।।

कलियुग के प्रभाव-विस्तार-समूह का विनाश करने वाले प्रभो ! मैं निरन्तर ही आपका शरणागत हूँ। हे दयामय ! मेरे प्रति दयाभाव वरतिये। हे मङ्गलो के मङ्गल ! मुझे मङ्गल प्रदान करिये।

ननु विहाय सृतिं श्रुतिसम्मितां
स्मरणचिन्तनसेवनसम्बलाम् !
विलपनैकबलो भवदन्तिक
गणपते ! विभवाय समागतः ।।१०।।

वेदप्रतिपादित, स्मरण-चिन्तन तथा सेवारूपी सम्बल वाली परिपाटी को निश्चय ही छोडकर हे गणपति ! ऐश्वर्य-प्राप्ति के निमित्त, क्रन्दन रूपी एकमात्र बल वाला मैं आपके समीप आया हूँ।

देहि मे परमां भक्तिं मृदुवात्सल्यतोषिणीम्।
इहामुत्र च सौख्याय मङ्गल वितर प्रभो !!११।।

कोमल वत्सभाव को तुष्ट करने वाली श्रेष्ठ भक्ति मुझे दीजिये ताकि इहलोक तथा परलोक मे सुख प्राप्त हो। हे प्रभो ! मङ्गल वितरित कीजिये।

वसुदृग्गगनदृगब्दे श्रावणमासेऽसितेऽह्नि शु ाख्ये।
मङ्गलायतनगीतं विरचितमिदं हि राजेन्द्रेण ।।१२।।

वसु (आठ) दृक् (दो) गगन (शून्य) तथा दृक् (दो) संज्ञक संवत् (२०२८) मे, कृष्णपक्षीय सावन महीने मे शुक्रवार के दिन राजेन्द्रमिश्र ने यह मङ्गलायतन गीत निर्मित किया।

आत्मनिवेदनम्

नाल्प केन कदा कथं क्व च मुधा नोक्त शुभंवाऽशुभ
तूष्णीम्भावमुपेत्य किन्तु दिवसाः नीताः मयाऽद्यावधि ।
प्राकाश्यं ह्युपनेष्यति स्वयमहो कालो वटुम्मामिम
सश्रोतुं मधुरध्वनि कियदहो पिण्ड मुखे पूरये ।।१।।

(मेरे विषय मे) प्रभूत मात्रा मे अच्छी या बुरी बातें , कहाँ, किस तरह और किसके द्वारा बेमतलब नही कही गई ? परन्तु चुप्पी साध कर ही आज तक मैंने दिन बिता दिये । निश्चय ही आनेवाला समय मेरे स्वरूप को प्रकाशित कर देगा । लोगो की मधुरवाणी सुनने के लिये उनकी कितनी तेल-मालिश करू ?

का का दग्धा दुराशा कटुगरलमयी लाञ्छन ापि किं किं
कः कः कल्पोऽनभीष्टस्तव शुभपरिधौ नागतो लक्षवारम् ।
मद्वाञ्छे प्राणवल्लि प्रणयिनि ! नितरामस्मदाधाररेखे !!
त्यक्तोऽहं न त याऽस्मि प्रभुचरणनत स्तोकमात्रं तथापि ।।२।।

प्राणघातक हलाहल मे डूबी तथा भस्मीभूत कौन-कौन दुराशाये, कौन-कौन लाँछन और कौन-कौन अनचाही परिस्थियाँ तुम्हारी मगलमय परिधि मे अनेक बार नही आई ? मेरे जीवन पर अवलम्बित, मुझसे प्रीति निभानेवाली, प्राणवल्लरीस्वरूप, हे मेरी आकाक्षे ! जगन्नियन्ता के चरणो मे विलीन मैं, फिर भी तुम्हारे द्वारा रञ्चमात्र भी उपेक्षित नही किया गया ।

आयुष्यस्य दशत्रयी गतवती वर्षद्वयेनाधिका
भारो नापचितो भुवो न च मम प्राणव्यथाया ध्रुवम् ।
दर्शं दर्शमहो प्रवाहसलिलं नक्रादिभिस्सङ्कुलं
संसारार्णवसम्भव भवभिया चित्तं विरक्तायते ॥३॥

जिन्दगी के बत्तीस बरस बीत गये परन्तु निश्चय ही न तो वसुधा का भार कुछ कम हुआ और न ही मेरी मानसिक व्यथाओं का ! क्या कहूँ ? ससार रूपी समु मे विद्यमान (पामरजन रूपी) नक्रादि जीवो से ओत-प्रोत धारा-जल को देख-देखकर अब भवभीतिवश चित्त विर होता जा रहा है ।

नानन्दो न च वैभ ं न च सुखं बाल्येऽनुभूतम्मया
प्रौढ़प्रीतिपुरस्सर रतिपतेर्नारार्तिक यौवने ।
आधिर्बन्धुजनप्रणीतपरिधिर्दंशोदधिः केवलं
मूकीभूय ललाटलेखमुररीकृत्यैव सोढो मया ॥४॥

वचपन मे (पितृहीनतावश) न आनन्द (वात्सल्य) प्राप्त कर सका, न वैभव (संरक्षण) और न ही सुख (पालन-पोषण) युवावस्था मे एकनिष्ठ-प्रीति से विलसित कन्दर्प की आरती का भी अनुभव मैंने नही किया । बस, मूक बन कर तथा अपनी भाग्यलिपि को ही सर्वात्मना स्वीकार कर मैंने अपने ही भाई-बन्धुओं द्वारा निर्मित चहारदीवारी वाली तथा विषदशो की समुद्रभूत आधियो (व्यथाओ) को सहा ।

पीयूषं ह्यवधूय ये निजमहो हालाहल कुर्वते
तद्द्वारैव ससागरा भुवमिमां भोक्तु वांञ्छन्ति ये ।
तत् तेषा सहते कथं भरमसौ स्रष्टा कलौ रक्षसां
धर्मो वा दुरितानि हन्त ! कुरुते नष्टानि तेषा कथम् ॥५॥

अमृत (मय सद्व्यवहारो) को उपेक्षित करके जो लोग अपने विष (म पापाचरणो) का ही प्रयोग करते है और जो लोग अपने उसी घिनौने

आचरण से समुद्रपर्यन्त इस पृथ्वी का उपभोग करने की इच्छा रखते हैं—ऐसे नरपिशाचो का दुर्वह भार इस राल कलि मे विधाता कैसे सह लेता है ? और आश्चर्य है कि उनके पापो का विनाश भला धर्म ही कैसे कर पाता है ।

आश्चर्यं मलभोजिनोऽप्यहरहः कुल्यैकवासाश्रया
यन्नीचाधमसूकरा मलयजं निन्दन्ति तारस्वरैः ।
सौरभ्यीकरणं मलस्य भवति स्फारं किमेतावता
चञ्चच्चन्दनपूतिमत्त्वमथवा केनेदमालक्ष्यते ॥६॥

बडे आश्चर्य की बात है कि मैला खाने वाले तथा बजबजाती गन्दी नालियों मे पडे रहने वाले, नीच-अधम सुअर भी गला फाड-फाड कर चन्दन की निन्दा किया करते है । क्या उनके इस रण से मैले का 'सौरभ्यीकरण' (सुरभित बना दिये जाने का भाव) सिद्ध हो जाता है अ वा प्रशसनीय चन्दन का 'पूतिमत्त्व' (दुर्गन्धयुक्तता) इसे भला कौन देखता है ?

स्वप्नोऽङ्कुरितो दलद्वयमपि श्वोऽवश्यमेति प्लुतिं
स्कन्धोऽप्यस्य विजृम्भते त्रिदिवसैः शाखाश्च मासेऽचिरम् ।
पुष्पं भाविनि हायने फलमपि द्वित्रैर्ददाति ध्रुवं
वर्षैरित्यनुमाति जागरगजेनाल समुन्मूलितम् ॥७॥

सपना आज अकुरित हुआ ! अब ही कल (इसमे) दो पत्तियाँ लग जायेंगी । तीन दिनो मे इसका तना भी दिखाई प ने लगेगा और महीने भर के ही अन्दर शाखायें ! अगले वर्ष तक इस (स्वप्नतरु) मे फूल आ जायेगा और निश्चय ही दो-तीन वर्ष मे फल भी प्रकट हो जायेगा—बस, यही सब अनुमान करते-करते जागरण रूपी गजराज द्वारा सब कुछ तहस-नहस कर दिया गया ।

नाकाक्षा कवि कर्मणि प्रवचने नाल्पोऽनुषङ्गोऽथवा
गार्हस्थ्येऽभिरुचिर्न वृत्तिरुरसो वार्ताक्रमेऽपि ध्रुवम् ।
रुद्राणीचरणाम्बुजाङ्कपतिते चित्तद्विरेफेऽधुना
क्वारामः क्व नु मल्लिका क्व मलयः क्वासौ मधूकद्रुमः ॥८॥

कविता लिखने और गाने की इच्छा समाप्त हो गई। अध्यापन मे (भी) कुछ आसक्ति नही रह गई। घर-गृहस्थी मे अभिरुचि नही रही और सच कहूँ, किसी से बातचीत करने मे भी मन नही लगता। अब, जब से चित्त रूपी भ्रमर भगवती रुद्राणी के चरण-कमलो मे विलीन हो उठा—कहाँ रह गई विलासवनिका, कहाँ रह गई मल्लिका, कहाँ रहा मलयानिल और कहाँ रहा वह महुवे का पेड !!